आर.एन.आई. नं. 3653/57 डाक पंजीयन संख्या RJ/JPC/M-21/2012-14
मुद्रण तिथि दिनांक 5 से 8 मई, 2014
वर्ष : 72 ★ अंक : 05 ★ मूल्य : 10 रु.
डाक प्रेषण तिथि 10 मई, 2014 ★ वैशाख, 2071

ISSN
2249-2011

हिन्दी मासिक

जिनवाणी

परस्परोपग्रहो जीवानाम्

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल
जयपुर

मंगल-मूल, धर्म की जननी, शाश्वत सुखदा कल्याणी।
द्रोह-मोह-छल-मान-मर्दिनी, फिर प्रगटी यह 'जिनवाणी'॥

भारतवर्ष का स्वर्णतीर्थ

करो शाकाहार का प्रचार
होगा अहिंसा का प्रसार
इसी से खुलेंगे केवल
विश्वशांति के महाद्वार...

परिपूर्ण है आहार शाकाहार......
मन मैं रहे सदा शुद्ध विचार
खुलेंगे कल्याणकारी विश्वशांति के द्वार....
सफल जीवन होगा सफल साकार

रतनलाल सी. बाफना ज्वेलर्स

स्वर्णतीर्थ - औरंगाबाद 0240-2244520
स्वर्णतीर्थ - जळगांव (H.O.) 0257-2223903
स्वर्णमॉल - जळगांव 0257-2241353
स्वर्णतीर्थ - नाशिक 0253-2315644

जहाँ विश्वास ही परम्परा है *मानवीय आहार शाकाहार*

www.malhar.org

Jai Guru Hasti

Jai Guru Heera

Jai Guru Maan

2903

।। जैनं जयति शासनम् ।।

दान से पुण्य होता है, पर संयम से कर्मों की निर्जरा होती है।
दान हृदय की सरलता है, पर संयम हृदय की शुद्धता है ।।

DP Exports is leading Indian firm specializing in import, export and manufacture of diamonds and jewellery. We offer a wide range of rough diamonds, along with a specialization in the field of manufacturing polished diamonds and jewellery.

timeless jewels
unmatched quality
flawless craftsmanship

ACHARYA SRI KAILASSAGARSURI GYANMANDIR
SRI MAHAVIR JAIN ARADHANA KENDRA
Koba, Gandhinagar-382 009
Phone : (079) 23276252, 23276204-0

Dharamchand Paraschand Exports

1301, Panchratna, Opera House, Mumbai - 400 004. India.
t: +91 22 2363 0320 / +91 22 4018 5000
f: +91 22 2363 1982 email : dpe90@hotmail.com

।। महावीराया नमः ।।

जय गुरु हस्ती

जय गुरु हीरा जय गुरु मान

जिस दिन श्रद्धा जग जायेगी, अनमोल-दुर्लभ परम अंग रूप मानव जीवन को समर्पण करते देर नहीं लगेगी। श्रद्धा है तो प्राण अर्पण भारी नहीं लगेगा।

-आचार्य श्री हीरा

With Best Compliments From :

S. .D. GEMS &
SURBHI DIAMONDS

Prakash Chand Daga

Virendra Kumar Daga (Sonu Daga)

202, Ratna Deep, Behind Panchratna, 78- J.S.S. Road, Mumbai- 400 004
Ph. : (O) 022-23684091, 23666799 (R) 022-28724429
Fax : 022-40042015 Mobile : 098200-30872
E-mail : sdgems@hotmail.com

Jai Guru Heera Jai Guru Hasti Jai Guru Maan

व्यसनी से उसी प्रकार बचना चाहिये, जिस प्रकार छूत के रोगी से बचा जाता है।

- आचार्य श्री हीरा

With Best Compliments from :

Basant Jain & Associates, Chartered Accountants
BKJ & Associates, Chartered Accountants
BKJ Consulting Private Limited
Megha Properties Private Limited
Ambition Properties Private Limited

601, Dalamal Chambers, New Marine Lines, Mumbai-400020

बसंत के. जैन

अध्यक्ष : श्री जैन रत्न युवक परिषद, मुम्बई
ट्रस्टी : गजेन्द्र निधि ट्रस्ट

Tel. : (O) 22018793, 22018794 (R) 28810702

जिनवाणी *हिन्दी-मासिक*

संरक्षक
अखिल भारतीय श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ
घोड़ों का चौक, जोधपुर (राज.), फोन-2636763

संस्थापक
श्री जैन रत्न विद्यालय, भोपालगढ़

प्रकाशक
विनयचन्द डागा, मंत्री-सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल
दुकान नं. 182-183 के ऊपर, बापू बाजार,
जयपुर-302003(राज.)
फोन-0141-2575997, फैक्स-0141-2570753

प्रधान सम्पादक
प्रो. (डॉ.) धर्मचन्द जैन
सामायिक-स्वाध्याय भवन, प्लॉट नं. 2,
नेहरू पार्क, जोधपुर-342003 (राज.)
फोन : 0291-2626279
E-mail : jinvani@yahoo.co.in
Website: www.jinvani.net

सह-सम्पादक
नौरतन मेहता, जोधपुर
डॉ. श्वेता जैन, जोधपुर

भारत सरकार द्वारा प्रदत्त
रजिस्ट्रेशन नं. 3653/57
डाक पंजीयन सं.-RJ/JPC/M-21/2012-14
ISSN 2249-2011

परस्परोपग्रहो जीवानाम्

इह कामणियट्टस्स,
अत्तट्ठे नावरज्झई।
पूइ देह-निरोहेणं,
भवे देवित्ति मे सुयं।।
उत्तराध्ययन सूत्र, 7.26

जो कामभोग से निवृत्त हुआ,
उसका निज लाभ नहीं जाता।
मलिन औदारिक देह छोड़ वह,
देव बने, श्रुत बतलाता।।

मई, 2014
वीर निर्वाण संवत्, 2540
वैशाख, 2071

वर्ष 72 अंक 5

सदस्यता शुल्क

त्रिवार्षिक : 250 रु.
आजीवन देश में : 1000 रु.
आजीवन विदेश में : 12500 रु.
स्तम्भ सदस्यता : 21000/-
संरक्षक सदस्यता : 11000/-
साहित्य आजीवन सदस्यता- 4000/-

एक प्रति का मूल्य : 10 रु.

शुल्क/साभार नकद राशि 'जिनवाणी' बैंक खाता संख्या SBBJ 51026632986
IFSC No. SBBJ 0010843 में जमा कराकर जमापर्ची (काउन्टर-प्रति) अथवा ड्राफ्ट भेजने का पता
'जिनवाणी', दुकान नं. 182 के ऊपर, बापू बाजार, जयपुर-302003 (राज.)
फोन नं.0141-2575997, 2571163, फैक्स : 0141-2570753, E-mail:sgpmandal@yahoo.in

मुद्रक : दी डायमण्ड प्रिंटिंग प्रेस, मोतीसिंह भोमियों का रास्ता, जयपुर, फोन- 0141-2562929

नोट- यह आवश्यक नहीं कि लेखकों के विचारों से सम्पादक या मण्डल की सहमति हो।

विषयानुक्रम

सम्पादकीय-	क्यों करें दान?	-डॉ. धर्मचन्द जैन	7
अमृत-चिन्तन-	आगम-वाणी	-संकलित	13
	वाग्वैभव(25)	-आचार्यप्रवर श्री हीराचन्द्र जी	15
विचार-वारिधि-	ब्रह्मचर्य	-आचार्यप्रवर श्री हस्तीमल जी	14
प्रवचन-	अमूल्य समय का करें सदुपयोग	-आचार्यप्रवर श्री हीराचन्द्र जी	16
	भीतरी अन्धता है खतरनाक	-मधुरव्याख्यानी श्री गौतममुनि जी	22
दार्शनिक-लेख-	जैन दर्शन में हेमचन्द्रसूरि कृत प्रमाण-विवेचन	-प्रो. सागरमल जैन	27
शोधालेख -	पिण्डस्थ, पदस्थादि ध्यान-चतुष्टय	-डॉ. संजीवकुमार गोधा	33
गवेषणा-	प्रतिमाधारी द्वारा स्वमूत्रसेवन	-श्री नवरतन डागा	40
तत्त्व-ज्ञान-	आओ मिलकर ज्ञान बढ़ाएँ (87)	-श्री धर्मचन्द जैन	44
अंग्रेजी-स्तम्भ-	The Unique and the Universal Dimensions of Jainism (2)	*-Dr Priyadarshana Jain*	49
युवा-स्तम्भ -	जैन जीवन-शैली और तनाव-प्रबन्धन	-डॉ. तृप्ति जैन	55
शाकाहार-	शाकाहार की चेतना जगाने के उपाय	-डॉ. दिलीप धींग	68
प्रासङ्गिक -	मांस-निर्यात नीति पर पुनर्विचार आवश्यक	-डॉ. एन.के.खींचा	72
परिवार-स्तम्भ -	ग्रीष्मावकाश का धार्मिक सदुपयोग कैसे हो?	-श्री पारसमल चण्डालिया	75
नारी-स्तम्भ -	जैन संस्कृति में नारी की स्थिति	-डॉ. मीनाक्षी जैन डागा	77
धारावाहिक-	लग्न की वेला (3)	-आचार्य श्री उमेशमुनि जी 'अणु'	81
प्रेरक-प्रसंग-	बाहरी प्रकोप हुआ शांत	-श्री जगदीश जैन	87
स्वास्थ्य-विज्ञान -	भोजन के अनुकूल दिनचर्या	-डॉ. चंचलमल चोरडिया	88
बाल-स्तम्भ -	सिकन्दर की वसीयत	-डॉ. सेवा नन्दवाल	99
	साधनों की हर तरफ, बढ़ रही भरमार है	-श्री मोहन कोठारी	100
कविता/गीत-	प्रभु शान्ति शान्ति दातार	-मधुरव्याख्यानी श्री गौतममुनि जी	43
	निज का दृढ़ संकल्प चाहिए	-श्री मनोज कुमार जैन 'निर्लिप्त'	47
	जीवन-बोध क्षणिकाएँ	-श्रद्धेय श्री यशवन्तमुनि जी	86
	मुक्तक	-श्री अनिलकुमार जैन	102
	मानव को महान् बनाये, वह धार्मिक पाठशाला है	-श्री जितेन्द्र जैन 'प्रेक्षक'	103
	तुमको लाखों प्रणाम	-श्री उम्मेदमल जैन	104
विचार-	जैन जीवन-शैली	-डॉ. श्वेता जैन	48
	सम्यग्दर्शन की महिमा	-सौ. कमला सिंघवी	54
	भला होने का अर्थ	-एक साधक संत	71
	गृह शान्ति	-श्री शान्तप्रकाश सत्यदास	74
	पैसा सब कुछ नहीं	-श्री राजकुमार नवलखा	80
	कौन?	-श्री पीरचन्द चोरडिया	98
	अनमोल वचन	-श्री आशीष जैन	123
साहित्य-समीक्षा-	नूतन साहित्य	-डॉ. श्वेता जैन	105
समाचार विविधा-	समाचार-संकलन	-संकलित	106
	साभार-प्राप्ति-स्वीकार	-संकलित	121

सम्पादकीय

क्यों करें दान?

❖ डॉ. धर्मचन्द जैन

दान करने का कोई न कोई सामर्थ्य प्रत्येक मनुष्य को प्राप्त है। अपनी योग्यता के अनुसार वस्तु, धन, ज्ञान, समय, सेवा आदि के रूप में जगत् को कुछ भी दिया जा सकता है। इसमें आयु, लिङ्ग अथवा क्षेत्र का बन्धन नहीं है। जो लेने की अपेक्षा देने में अधिक विश्वास रखता है वह जगत् के लिए अधिक उपयोगी होता है। दान किसे कहा जाए तो कहना होगा कि जो संयोग से हमें प्राप्त है, उसे हित बुद्धि से जरूरतमंद को अथवा सत्पात्र को देना दान है।

प्रश्न यह है कि दान क्यों किया जाए? इसके उत्तर में कहा जा सकता है कि हम स्वहित एवं परहित के लिए दान दें। दान से अपना भी हित होता है एवं दूसरों का भी। दान से अपना हित क्या हो सकता है, तो कहना होगा कि (1) दान से अपनी मानी हुई वस्तु के प्रति आसक्ति टूटती है, (2) दूसरों के प्रति आत्मवद्भाव की जागृति होती है एवं उसका विकास होता है, (3) प्राप्त वस्तुओं एवं धन आदि का सदुपयोग होता है, (4) दूसरों को साता उपजाने, प्राणरक्षा करने एवं उनके विकास में योगदान होता है, (5) जिनको कुछ दिया जाता है, उनसे सद्भाव एवं आशीर्वचन प्राप्त होते हैं। समाज में प्रतिष्ठा बढ़ती है एवं प्रेम मिलता है, (7) धन, वस्तु, ज्ञान आदि का अधिकतम सदुपयोग दान के माध्यम से ही सम्भव है, (8) दान की प्रवृत्ति से उदारता का निरन्तर विकास होता है, (9) ममत्व एवं आसक्ति टूटने के कारण दान, कर्म-निर्जरा का भी साधन बनता है, (10) उत्कृष्ट भावना से दिया गया दान तीर्थंकर नाम प्रकृति के उपार्जन में भी कारण बनता है।

दान से परहित होता है, इस सम्बन्ध में कहना होगा कि कुछ व्यक्ति जो अभाव के कारण आर्त्तध्यान में लगे रहते हैं, उनकी चिन्ता कम होती है तथा वे कुछ अच्छा सोचने में समर्थ होते हैं, साधारण जीवनयापन भी न हो तो आर्त्तध्यान ही होता है, जिससे उबरने में दान की प्रवृत्ति सहायक है।

त्याग एवं दान में महद् अन्तर है। यद्यपि दोनों में वस्तु के प्रति आसक्ति एवं ममत्व का त्याग किया जाता है, किन्तु त्याग में वस्तु किसी को प्रदान नहीं की जाती, जबकि दान में उसे उपयुक्त पात्र को दिया जाता है। तत्त्वार्थ सूत्र में दान का लक्षण इस प्रकार दिया गया है- **अनुग्रहार्थं स्वस्यातिसर्गो दानम्।** दूसरे के उपयोग के लिए अपने स्वामित्व की वस्तु का त्याग करना दान है। दान में त्याग समाहित है, किन्तु त्याग में दान नहीं। जिस वस्तु का दान किया जाता है, उस पर से अपना स्वामित्व हटाकर दूसरे का स्वामित्व स्थापित किया जाता है।

फिर उस वस्तु के उपयोग का अधिकार भी दूसरे का हो जाता है। त्याग में मात्र अपने स्वामित्व को छोड़ा जाता है, एवं वस्तु का उपयोग कौन करेगा, इस पर ध्यान नहीं दिया जाता। दशवैकालिक सूत्र में त्यागी का लक्षण करते हुए कहा गया है-

जे य कंते पिए भोए लद्धे, विपिट्ठिी कुव्वइ।
साहीणे चयइ भोए, से हु चाइ त्ति वुच्चइ।।

अर्थात् जो कान्त एवं प्रिय भोगों के प्राप्त होने पर भी उनसे पीठ मोड़ लेता है तथा स्वाधीन होकर उनका त्याग कर देता है उसे त्यागी कहा जाता है। यहाँ पर यह ध्यातव्य है कि भविष्य के लिए भोगों का सेवन न करने का भाव भी उनका त्याग ही है। 'प्रत्याख्यान' शब्द इस त्याग का सूचक है। भविष्य में विषयों अथवा वस्तुओं का सेवन नहीं करने का व्रत अंगीकार करना त्याग को ही द्योतित करता है।

दान करना मनुष्य की उदारता का सूचक है। उदारता एक उत्कृष्ट भाव है जो मनुष्य को दानशील, सहनशील, समन्वयशील एवं क्षमाशील बनाता है। जो मनुष्य मात्र अपने सुखभोग के स्वार्थ तक सीमित रहता है वह दान नहीं कर पाता। जिसे अन्य प्राणियों के दुःख दर्द एवं उनकी जरूरतों का एहसास होता है वह ही उन्हें कुछ दे पाता है।

कुछ लोग देने के साथ बदले में कुछ चाहते हैं, तो उनका सामाजिक लेन-देन तो हो जाता है, किन्तु वह कर्म-निर्जरा का साधन नहीं बनता। सामाजिक व्यवहार के लिए देना कोई दान नहीं।

दान करने के लिए प्रचुर मात्रा में धन-संग्रह की आवश्यकता नहीं होती। अपनी आय का कुछ अंश देना अथवा मन, वचन एवं शरीर की जो शक्ति प्राप्त है उसका जनहित में उपयोग करना भी दान ही है। देने की भावना मनुष्य में प्रारम्भ से विकसित होती रहनी चाहिए। यह आवश्यक नहीं कि कोई एक साथ लाख और करोड़ का दान करे, प्रतिदिन एक रुपया दान करके भी कोई दान की भावना को विकसित कर सकता है। दान में भावना का अधिक महत्त्व है। लेने की अपेक्षा देने का भाव व्यक्ति को महान् बनाता है। अतः बाल्यकाल से जिस प्रकार बचत की प्रवृत्ति का विकास आवश्यक है उसी प्रकार दान की प्रवृत्ति को भी प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

निःस्वार्थ भाव से दान देना अत्यन्त कठिन है। अरबों की सम्पत्ति का जनहित में दान करने वाले बिल गेट्स ने व्हाइट हाउस में मानवसेवा पर आयोजित एक संगोष्ठी में कहा था- "पैसा कमाने की बजाय पैसा देना अधिक मुश्किल है।" विशेषतः व्यापारिक बुद्धि वाला व्यक्ति जितना दान करता है उससे अधिक उसका प्रचार चाहता है। लोगों के बीच में उस दान के प्रतिफल में प्रतिष्ठा एवं पद की लालसा रखता है। सर्वत्र उसे आदर की दृष्टि से देखे जाने की अपेक्षा रखता है। यदि इसमें कहीं कमी आती है तो वह दूसरों से इसकी शिकायत करता है। यद्यपि शुभ भावना से दान करने पर उपर्युक्त फल स्वतः प्राप्त होते हैं, किन्तु इनकी वांछा करना

दोष है। जो उपकार की भावना से देता है वह प्रतिफल में कोई चाहना नहीं करता। उसे दूसरों को सहयोग कर आनन्द का अनुभव होता है तथा दूसरों के चेहरे की प्रसन्नता को देखकर स्वयं प्रसन्नता का अनुभव करता है।

दान का सम्बन्ध दाता एवं ग्रहीता दोनों से होता है। दाता जहाँ उपयुक्त पात्र को देकर अपनी आसक्ति एवं ममत्व बुद्धि को क्षीण करता है, वहाँ ग्रहीता उस वस्तु को प्राप्त कर अपने जीवन में साता का अनुभव करता है। दूसरों को साता उपजाने के लिए देना अथवा उन्हें विपदा से पार उतारने के लिए देना मानव का एक कर्तव्य है। कई बार दाता एवं ग्रहीता के व्यवहार में जटिलता दिखाई देती है। दाता सोचता है कि जिसे मैं अपनी वस्तु का दान कर रहा हूँ, वह उसका पात्र भी है या नहीं, वह उसका उपयोग गलत कार्य में तो नहीं करेगा, उसकी अनावश्यक लेने की आदत कहीं बढ़ तो नहीं जाएगी आदि अनेक शंकाएँ दाता के मन में उत्पन्न हो जाती हैं। दान लेने वाला कई बार सोचता है कि इनके (दाता के) पास तो बहुत पैसा है, थोड़ा मुझे दे दिया तो क्या फर्क पड़ने वाला है। ग्रहीता के मन में कृतज्ञता का भाव होना चाहिए तथा दान ग्रहण करने को अपनी विवशता मानना चाहिए। ऐसे मौके पर उसका संकल्प होना चाहिए कि अवसर आने पर मैं भी किसी का सहयोग कर उसे आगे बढ़ाऊँगा। अभी मेरी विवशता है कि मुझे दूसरों से सहयोग लेना पड़ रहा है। ऐसे पात्र को देने में दाता को शंका नहीं रहती, किन्तु जो एक नहीं अनेक स्थानों से लेने के लिए तत्पर रहते हैं तथा उसे अपनी एक आदत बना लेते हैं तो उन्हें देने में लोग संकोच करने लगते हैं। कहते हैं कि लोगों की उदार भावना एवं करुणा भावना का उपयोग कर देश में अनेक भिखारी अपना जीवन यापन कर रहे हैं। उन्होंने इसे अपना एक व्यवसाय बना लिया है। आवश्यकता इस बात की है कि प्रत्येक व्यक्ति एक रचनात्मक कार्य करे तथा उसके बदले में धनराशि प्राप्त करे। जीवन में स्वावलम्बन एवं श्रम को प्रोत्साहन मिलना चाहिए। प्रायः बालक, वृद्ध एवं असहाय को मदद की आवश्यकता होती है। उनका यथावसर सहयोग करना चाहिए। सहयोग करना एक गुण है, किन्तु अर्थ सहयोग के साथ व्यक्ति की योग्यता का विकास करने की भी भावना रखनी चाहिए। तत्त्वार्थसूत्र के अनुसार दान के अन्तर्गत विधि, दान देने योग्य वस्तु, दान ग्रहण करने वाले पात्र तथा दाता की भावना पर विचार किया जाना चाहिए।

दान किसी का तिरस्कार करते हुए नहीं, अपितु सम्मानपूर्वक दिया जाना चाहिए। ग्रहीता को हीन भावना का अनुभव नहीं होना चाहिए। उसे लगना चाहिए कि यह व्यक्ति मेरा हितैषी है एवं संकट में सहयोग करने की भावना रखता है। साधु-साध्वी को आहार आदि का दान करने की भी विधि होती है। उत्पादना आदि एषणा के दोषों से बचते हुए सम्मानपूर्वक साधु-साध्वी को आहार आदि का दान किया जाता है। जरूरतमंद गृहस्थ को गुप्त रूप से सहयोग करना, उसका धैर्य बढ़ाना तथा उसकी वृत्तियों को निर्मल रखना दान का उत्कृष्ट रूप है। किसी को

छोटा सा सहयोग कर सबके सामने उस सहयोग को जताना तथा उसका प्रचार करना दान की सही विधि नहीं है। इससे ग्रहीता के स्वाभिमान को चोट पहुँचती है। अतः ग्रहीता के स्वाभिमान की रक्षा करते हुए ससम्मान दान देना चाहिए।

इसी प्रकार दान में जो वस्तु दी जा रही है वह ग्रहीता में दोष उत्पन्न करने या उसे हानि पहुँचाने में कारण नहीं बननी चाहिए। कई बार सड़ी हुई चीजें दान में दी जाती हैं, जो ग्रहीता को बीमार कर सकती हैं अथवा दान दी गई वस्तु या राशि उसके कुव्यसनों को बढ़ाने में काम आ रही हैं तो ऐसी वस्तु एवं राशि को देने पर समाज हित की दृष्टि से पुनर्विचार आवश्यक है। कलुषित भावना से यदि कोई सहयोग मांगने के लिए आया हो तो एक बार रुककर सोचना चाहिए तथा निर्दोष होने पर ही सहयोग करना चाहिए।

दान किसे दिया जाए, इसके लिए उपयुक्त पात्र का परीक्षण होना चाहिए। पहली बात तो यह कि जो जरूरतमंद हो तथा जिसे जीवन यापन में शिक्षा, चिकित्सा आदि आवश्यक कार्यों के सम्पादन में कठिनाई का अनुभव हो रहा हो, उसे दान देना चाहिए। कभी भूकम्प, तूफान आदि प्राकृतिक कारणों से उत्पन्न विनाश लीला हो अथवा सूखे के कारण गायों के चारे-पानी की व्यवस्था का प्रश्न हो, सर्वत्र उत्साह से सहयोग की आवश्यकता है। सहयोग से बड़ी-बड़ी आपदाओं से पार उतरा जा सकता है। हाँ, गृहस्थों को देते समय सामाजिक दृष्टि से भी विचार करना आवश्यक है। यदि कोई दिए गए सहयोग का दुरुपयोग करता है तो ऐसे पात्र को पुनः दान देने से पूर्व सोचना चाहिए।

दान में दाता की भावना भी महत्त्वपूर्ण होती है। वह किस भावना से दान देता है, इसके अनेक आयाम हो सकते हैं। संक्षेप में इन्हें दो प्रकारों में विभक्त किया जा सकता है- 1. आध्यात्मिक दृष्टि तथा 2. सामाजिक दृष्टि। आध्यात्मिक दृष्टि से देने वाला दाता वस्तु आदि के प्रति अपनी आसक्ति को तोड़ने एवं ममत्व को समाप्त करने के लिए वस्तु आदि का त्यागपूर्वक दान करता है। ऐसा साधक यह नहीं सोचता कि दी हुई वस्तु का आगे क्या उपयोग होगा। सामाजिक दृष्टि से देने वाला व्यक्ति यह भी सोचता है कि उसकी दी हुई राशि एवं वस्तुओं का उपयोग किस प्रकार हो रहा है। यदि उसे सामाजिक दृष्टि से हानि नज़र आती है तो वह पुनः उस व्यक्ति को अथवा उस प्रकार के व्यक्तियों को दान देते समय विचार करता है। दाता को अपनी भावना के अनुसार फल की प्राप्ति होती है। दाता यदि अपने दान का सामाजिक प्रतिष्ठा आदि के रूप में प्रतिफल चाहता है तो उसे आध्यात्मिक लाभ भले ही न हो, सामाजिक लाभ तो होता ही है। यहाँ उसका दान मोक्ष का कारण नहीं बनता, किन्तु समाज के उत्थान में तो निमित्त बन ही सकता है।

जब कोई व्यक्ति उपयुक्त पात्र को न ढूंढ पाए तो वह उपयुक्त संस्थाओं को दान दे सकता है। इससे उसे दिए गए दान के दुरुपयोग की चिन्ता नहीं रहेगी, क्योंकि संस्थाएँ प्रायः उपयुक्त

पात्र को सहयोग करने का लक्ष्य रखती हैं। धार्मिक संस्थाओं में भी दान की प्रवृत्ति की महती आवश्यकता होती है। संघ की कई संस्थाएँ दान से ही समृद्ध होकर गतिविधियों को संचालित करने में समर्थ होती हैं। इन संस्थाओं में धन-राशि एकत्रित करने के लिए कई मनोवैज्ञानिक उपाय अपनाये जाते हैं। एक तो विभिन्न प्रकार की बोलियाँ लगाकर धन एकत्रित किया जाता है, तो कहीं शिलापट्ट पर नाम का आकर्षण उत्पन्न कर दानराशि ली जाती है। कहीं पर पत्र-पत्रिकाओं में नाम का प्रकाशन करने के बहाने से दान राशि एकत्रित की जाती है। उपाय कुछ भी हों देने के लाभ दो प्रकार के होते हैं। एक लाभ से दाता लाभान्वित होता है तथा दूसरे लाभ से ग्रहीता अथवा समाज लाभान्वित होता है। दाता को भी दो प्रकार के लाभ होते हैं। यदि वह अपनी आसक्ति तोड़ने एवं परिग्रह घटाने के लिए दान करता है तो उसे कर्मनिर्जरा का आध्यात्मिक लाभ होता है। यदि उसका लक्ष्य अपना परिग्रह घटाने का नहीं होता है तो उसे प्रतिष्ठा, पद आदि के रूप में सामाजिक लाभ होता है। दान लेने वाली संस्था समृद्ध होकर जब उपयुक्त पात्र को सहयोग करती है अथवा उपयुक्त स्थान पर नियोजन करती है तो इससे संस्था का नाम चमकता है तथा योग्य व्यक्ति संस्था से सामाजिक दृष्टि से लाभान्वित अनुभव करता है। कभी वह आध्यात्मिक संस्था से जुड़कर आध्यात्मिक पथ पर भी आगे बढ़ सकता है।

यह एक सत्य है कि जो देता है उसे कई गुना प्राप्त होता है। यह आवश्यक नहीं कि जो वस्तु दी जाए वही हजार गुनी मिले, किन्तु उसका कई आयामों से हजार गुना लाभ देने वाले को होता है। मात्र आध्यात्मिक लाभ को ही लें तो वह हजार गुना ही नहीं असंख्य गुना कहा जा सकता है। सामाजिक दृष्टि से देखें तो समाज में प्रतिष्ठा आदि के माध्यम से भी दाता को अनेकविध लाभ होते हैं।

कुछ व्यक्ति इसलिए नहीं देना चाहते, क्योंकि वे अपना नाम कहीं प्रकाशित कराना नहीं चाहते। इसे भी आध्यात्मिक एवं सामाजिक दोनों दृष्टियों से उचित नहीं कहा जा सकता। क्योंकि देने की भावना में उपर्युक्त मान्यता बाधक है। गुप्त रूप से भी सहयोग किया जा सकता है। यदि न चाहते हुए भी कहीं नाम आता है, तो उसमें ऐतराज नहीं होना चाहिए। व्यक्ति, समाज और संघ के उन्नयन के लिए देने की भावना निरन्तर बलवती होना सबके लिए हितकारी है।

धन-सम्पत्ति आदि का दान जिस प्रकार दाता एवं ग्रहीता दोनों के लिए लाभकारी होता है, उसी प्रकार ज्ञान का दान भी दोनों के लिए हितकारी होता है। ज्ञान-दान धन-दान से बढ़कर है। अब ज्ञानदान भी गृहस्थ जीवन में व्यवसाय का रूप लेता जा रहा है। वास्तव में तो ज्ञान किसी को दिया नहीं जा सकता, हाँ दूसरे में विद्यमान ज्ञान को अभिव्यक्त करने का प्रयत्न किया जा सकता है। ज्ञानदान अथवा विद्यादान मोक्ष के उपाय के रूप में मान्य है। यह आध्यात्मिक दृष्टि से सम्पन्न हो तो संघ एवं समाज में एक अच्छा वातावरण बन सकता है, क्योंकि व्यक्ति के समुचित एवं स्थायी विकास में ज्ञान की महत्ता धन से अधिक होती है।

आजकल अंगदान, रक्तदान आदि के सम्बन्ध में प्रश्न उठाया जाता है कि इस प्रकार का दान आरंभ-समारंभ से युक्त है, अतः हेय है, किन्तु यह एक ऐकान्तिक दृष्टि कोण है। अन्य प्राणियों की रक्षा एवं जीवन दान के लिए स्वस्थ शरीर के रक्त का दान करना स्वास्थ्य की दृष्टि से रक्तदाता के लिए चिकित्सकों की राय में हानिकारक नहीं है तथा दूसरों के लिए भी वह जीवनदायी है। मृत्यूपरान्त भी शरीर के अंगों का उपयोग यदि किसी अन्य व्यक्ति के लिए होता है तो इसमें सामाजिक दृष्टि से लाभ ही है। आध्यात्मिक दृष्टि से भी यदि शरीर के प्रति पूरी तरह ममत्व छूट जाता है तो शरीर से होने वाले उपयोग से किसी प्रकार का कर्म नहीं बंधता है।

अभयदान श्रेष्ठदान है, क्योंकि वह पूर्णतः निरवद्य दान है। इसमें भयभीत प्राणियों को निर्भय बनाने के साथ उनकी प्राण-रक्षा के भाव निहित होते हैं। समयदान एक ऐसा दान है जिसमें व्यक्ति समय के निजी उपयोग के अधिकार का त्याग कर दूसरों की सेवा एवं उपकार में लगाता है। यह भी एक बहुत बड़ा दान है। जो धन, ज्ञान आदि देने में समर्थ न हो वह विभिन्न हितकारी एवं लोककल्याणकारी कार्यों में समय लगाकर उन्हें गति प्रदान कर सकता है।

अपनी चेतना के विकास में जितनी अहिंसा की भावना उपयोगी है उतनी ही उपयोगी उदारता की भावना है। जब तक उदारता नहीं होगी तबतक अन्य प्राणियों के प्रति आत्मवत् भाव का विकास नहीं हो सकेगा। उदार व्यक्ति आत्महित के साथ परहित करने में समर्थ होता है। यह उदारता दान की प्रवृत्ति से अभिव्यक्त होती है एवं विकसित भी। परिवार हो या समाज, संघ हो या राष्ट्र, सर्वत्र उदार भावों की आवश्यकता होती है। तीर्थंकरों एवं केवल ज्ञानियों में अनन्त दान स्वीकार किया गया है। ये कोई धन का दान नहीं करते। जगत् को ज्ञान देने के सम्बन्ध में उनकी उदार भावना कभी समाप्त नहीं होती। जो समाप्त नहीं होता वह अनन्त होता है। केवलज्ञानियों के पास देने के लिए ज्ञान ही सुलभ होता है। उसे देकर वे अनन्त लाभ को प्राप्त करते हैं।

ज्ञान एक ऐसा तत्त्व है जो देने पर भी आत्मा से अलग नहीं होता और न ही कम होता है। अतः ज्ञान बांटकर मानव जाति के मानसिक संतापों का निराकरण करने में ज्ञानी पुरुषों को, संत महात्माओं को, साधु-साध्वियों को निरन्तर योगदान करते रहना चाहिए। धन आदि वस्तुएँ जो संयोग से प्राप्त हुई हैं उनका वियोग होना निश्चित है। अतः यह चिन्तन करना चाहिए कि जो कुछ मुझे अल्पकाल के लिए संयोग से प्राप्त हुआ है, उसका मात्र उपयोग करने का मुझे अधिकार मिला है। इन पर स्वामित्व स्थापित करना मेरी भूल है। यदि मैं स्वामित्व स्थापित करता हूँ तो भ्रम में जीता हूँ। क्योंकि यह स्वामित्व काल्पनिक है तथा ममत्व के कारण दुःख को जन्म देने वाला है। अतः मेरी जब कोई वस्तु है ही नहीं तो दान करने का अभिमान भी क्या होगा? दान की भावना जितनी बढ़ेगी उतना ही समाज आगे बढ़ेगा तथा समाज के सदस्यों में पारस्परिक प्रेमभाव में अभिवृद्धि भी होगी। ★

अमृत-चिन्तन

आगम-वाणी

सत्तू य इइ के वुत्ते, केसी गोयमब्बवी।
तओ केसिं बुवंतं तु, गोयमो इणमब्बवी।।
एगप्पा अजिए सत्तू, कसाया इंदियाणि य।
ते जिणित्तु जहानायं, विहरामि अहं मुणी।।

–उत्तराध्ययन सूत्र, 23.37-38

अर्थ– केशीश्रमण ने गौतम स्वामी से पूछा– शत्रु किन्हें कहा गया है? गौतम स्वामी ने यह प्रश्न करने वाले केशी श्रमण को उत्तर दिया– नहीं जीती गई अपनी आत्मा, कषाय एवं इन्द्रियाँ शत्रु हैं। इनको न्यायोचित उपाय से जीतकर मैं विचरण करता हूँ।

विवेचन– संसार में हम प्रायः अपनी इच्छाओं की पूर्ति में बाधक बनने वाले लोगों को अपना शत्रु समझते हैं। अपने लक्ष्य की पूर्ति में जो बाधा उत्पन्न करता है, उसे भी शत्रु मानते हैं। आध्यात्मिक दृष्टि से शत्रुता को बाहर ढूँढना उचित नहीं है। अपने भीतर विद्यमान शत्रुओं पर दृष्टिपात करना आवश्यक है। भीतरी शत्रुओं को जीते बिना बाहरी शत्रुओं को जीतने का कोई महत्त्व नहीं है। उत्तराध्ययन सूत्र निर्देश करता है कि आत्मा ही अपना शत्रु होता है तथा वही अपना मित्र होता है। जब वह सन्मार्ग पर चलता है तो अपना मित्र कहलाता है तथा जब उन्मार्ग पर चलता है तो शत्रु कहलाता है। युद्ध में लाखों शत्रुओं को जीतने की अपेक्षा स्वयं को जीतना अधिक महत्त्व रखता है। वही परम जय कही गई है।

परिवार, समाज और व्यवसाय क्षेत्र में हमें अनेक शत्रु दिखाई देते हैं। उन शत्रुओं के कारण हम अपने जीवन में अशांति और उद्विग्नता का अनुभव करते हैं। किन्तु वास्तव में अपने भीतर में यदि समता का भाव हो तो बाहरी शत्रु हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सकते। हमारी दृष्टि का मोह आत्मा को मलिन बनाये रखता है। यह मलिन आत्मा ही प्रमुख शत्रु है। केशी श्रमण के द्वारा पूछे गये प्रश्न के उत्तर में गौतम स्वामी ने दस शत्रुओं का कथन किया है। इनमें दृष्टिमोह से युक्त मलिन आत्मा प्रथम शत्रु है, फिर क्रोध, मान, माया और लोभ ये चार कषाय हमारे आभ्यन्तर शत्रु हैं। क्रोध उत्पन्न होने पर हम क्या कर बैठते हैं, उसका हमें भान नहीं होता। क्रोध के कारण व्यक्ति अपना विनाश तो करता ही है, दूसरों को भी हानि पहुँचाता है। इस प्रकार यह शत्रु आत्मघातक एवं परघातक होने से हेय है। मान-कषाय आत्म-गुणों के विकास में सबसे बड़ा बाधक तत्त्व है। यह मनुष्य को मिथ्या अभिमान के नशे में चूर रखता है जिससे स्वयं के दोष न तो दिखाई देते हैं और न ही उन्हें दूर करने का सामर्थ्य उत्पन्न होता है। माया-कषाय मनुष्य को भुलावे एवं आत्म वंचना में बांधे रखता है।

(शेषांश पृष्ठ 21 पर)

विचार-वारिधि

ब्रह्मचर्य

आचार्य श्री हस्तीमल जी म.सा.

- जो कोटि सुवर्ण दान देता है, उसको उतना पुण्य नहीं होता, जितना ब्रह्मचर्य धारण करने पर होता है।
- जनसंख्या की वृद्धि से चिन्तित राष्ट्रीयजन वैज्ञानिक तरीकों से संतति नियन्त्रण करना चाहते हैं। भले ही इन उपायों से संतति निरोध हो जाय और लोग अपना बोझा हल्का समझ लें, क्योंकि इन उपायों से संयम की आवश्यकता नहीं रहती और ये सुगम और सरल भी जंचते हैं, किन्तु इनसे उतने ही अधिक खतरे की सम्भावना भी प्रतीत होती है। भारतीय परम्परा के अनुसार यदि ब्रह्मचर्य के द्वारा सन्तति निरोध का मार्ग अपनाया जाए तो आपका शारीरिक व मानसिक बल बढ़ेगा और दीर्घायु के साथ आप अपने उज्ज्वल चरित्र का निर्माण कर सकेंगे।
- व्यवहार में स्त्री-पुरुष के समागम को कुशील माना गया है। यद्यपि संसार-वृक्ष का मूल होने से गृहस्थ इसका सम्पूर्ण त्याग नहीं कर सकता, फिर भी परस्त्री-विवर्जन और स्वस्त्री-समागम को सीमित रखना तो उसके लिए भी आवश्यक है।
- ब्रह्मचर्य व्रत उत्तेजना के समय मनुष्य को कुवासनाओं से विजय प्राप्त कराकर धर्म-विमुख होने से बचाता है। ब्रह्मचारी सदाचारी गृहस्थ अपने जीवन में बुद्धि पूर्वक सीमा बांध कर, अपनी विवेक शक्ति को निरन्तर जागृत रखता है। वह भोग-विलास में कीड़े के सदृश तल्लीन नहीं रहता और न समाज में कुप्रवृत्तियों को ही फैलाता है। कामना का सीमित ढंग से शमन कर लेना ही उसका दृष्टिकोण रहता है।
- कुशील की मर्यादा के द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव रूप से अनेक रूप हैं। अपने स्त्री या पुरुष का परिमाण द्रव्य मर्यादा है, क्षेत्र से विदेश का त्याग करना, काल से दिन का त्याग और रात्रि की मर्यादा, भाव से एक करण एक योग आदि रूप से व्रत की मर्यादा होती है।
- यूनान के महापण्डित एवं अनुभवी शिक्षक सुकरात ने अपने एक जिज्ञासु भक्त से कहा था कि मनुष्य को जीवन में एक बार ही स्त्री समागम करना चाहिए। यदि इतने से कोई काम नहीं चला सके तो वर्ष में एक बार और यदि इससे भी काम न चले तो मास में एक बार। जिज्ञासु ने पूछा- अगर इससे भी आदमी काबू नहीं पा सके तो क्या करे? उत्तर मिला- कफन की सामग्री जुटाकर रख ले, फिर चाहे जितना भी समागम करे।

-'नमो पुरिसवरगंधहत्थीणं' ग्रन्थ से साभार

अमृत-चिन्तन

वाग्वैभव (25)

आचार्यप्रवर श्री हीराचन्द्र जी म.सा.

- धर्म-श्रवण की सफलता तभी है, जब पाप घटे, ममत्व हटे एवं कर्म कटे।
- साधक को धरती की तरह सहनशील बनना चाहिए।
- जैन संस्कृति आत्म-शुद्धि की ओर अधिक केन्द्रित हैं।
- जब लगे कि अब दवा भी काम नहीं कर रही तो संथारायुक्त समाधिमरण की भावना रखनी चाहिए।
- जहाँ अहिंसा है, वहाँ धर्म है और जहाँ धर्म है, वहाँ करुणा और दया है।
- जहाँ संवेदनहीनता है, वहाँ हिंसा स्वतः जीवन में प्रवेश कर जाती है और जहाँ संवेदनशीलता है, वहाँ अहिंसा बिना बुलाए ही आ जाती है।
- "जो प्राण आप दे नहीं सकते, उनको लेने का आपको कोई अधिकार नहीं है" हजारों बार यह पढ़ा-सुना है, अब इसे गंभीरता से जीवन-व्यवहार में उतारने की आवश्यकता है।
- राष्ट्र में हिंसा का वातावरण जो विस्तार पा रहा है, उसे अनदेखा मत कीजिये, उसका मुकाबला कीजिये।
- सर्वाधिक विकसित प्राणी मानव अपने दुःख को बढ़ा-चढ़ा कर व्यक्त करता है और दूसरों के दुःख पर संवेदनहीन बन जाता है।
- नये-नये कत्लखाने खोले जा रहे हैं। कभी किसी रूप में आपने इनका विरोध किया है? सरकार को एक पोस्टकार्ड भी लिखा है? हिंसा का विरोध कीजिए, सजग बनिये।
- रात्रि-भोज, बढ़-चढ़कर लाइट डेकोरेशन, जूठा छोड़ना आदि बातें प्रतिष्ठा की प्रतीक नहीं होनी चाहिए।
- प्रमाद और अहिंसा का छत्तीस का आँकड़ा है। जहाँ प्रमाद है अर्थात् राग-द्वेष की उत्पत्ति के प्रति सजगता नहीं है, वहाँ हिंसा का दोष लगता ही है। प्रमादी पग-पग पर हिंसा का भागी बनता है।
- प्रत्येक धर्मप्रेमी को खुली दृष्टि रखकर, आँख-कान खुले रखकर, समाज व देश के वातावरण पर नज़र रखकर चिन्तन करते हुए अहिंसा के लिए सक्रिय होकर आगे बढ़ना चाहिये।
- सत्संग और स्वाध्याय जीवन में क्षमा, धैर्य, सहिष्णुता को बढ़ाने के लिए हैं।
- नियम/प्रतिज्ञा की परीक्षा है- परीषह।

-हीरा प्रवचन-पीयूष से संकलित : श्री पी. शिखरमल सुराणा, चेन्नई

प्रवचन

अमूल्य समय का करें सदुपयोग

आचार्यप्रवर श्री हीराचन्द्र जी

आचार्यप्रवर पूज्य श्री हीराचन्द्र जी म.सा. द्वारा नेहरु पार्क, जोधपुर में सितम्बर 1994 को फरमाए गए इस प्रवचन का आशुलेखन श्री नौरतनमल जी मेहता, जोधपुर द्वारा किया गया है।-**सम्पादक**

तीर्थंकर भगवान् महावीर की अन्तिम-आदेय वाणी उत्तराध्ययन सूत्र का दसवाँ अध्ययन प्रमाद परिहार और समय की कीमत करने की प्रेरणा देता है। संसार में ऐसी कई वस्तुएँ हैं जो पैसों से खरीदी जाती हैं, परन्तु समय अनमोल हैं। इसे अन्य वस्तुओं की तरह बाजार से नहीं खरीदा जा सकता है। इसका मोल या मूल्य नहीं आँका जा सकता है। समय के प्रवाह को हम जानते देखते हैं। नदी के जल की भाँति वह ठहरता नहीं है। इसका उपयोग करना चाहें तो किया जा सकता है, पर इसे रोकना चाहें, यह आपकी, मेरी व तीर्थंकर भगवन्तों की भी सामर्थ्य में नहीं है। जैसे नदी का प्रवाह निरन्तर चल रहा है इसी तरह समय भी अबाधगति से बिना रुके चला जा रहा है। जिन-जिन प्राणियों ने समय का सदुपयोग किया वे एक सीढ़ी से दूसरी सीढ़ी चढ़ते हुए मंजिल पर पहुँच गये।

जिस विद्यार्थी ने समय का उपयोग अध्ययन-मनन-चिन्तन में किया वह दूसरे वर्ष अगली कक्षा में आ गया। जिस निर्धन ने समय पर श्रम किया उसने निर्धनता को दूर कर दिया। कल कोई हजारपति था, आज लखपति बन गया, जो लखपति था वह करोड़पति बन गया। जिस रोगी ने पथ्य और दवा का सेवन किया वह समय बीतने के साथ नीरोग हो गया।

समय एक सा : पुरुषार्थ में भेद

सबके लिए समय एक सा है, समान है। ऐसा नहीं है कि मेरे लिए कोई अलग समय है, आपके लिए कोई अलग। पापी के लिए भी वही समय है, धर्मी के लिए भी वही। समय के उपयोग में अन्तर आ जाता है। जो समय रावण को डुबा रहा था वही राम की प्रतिष्ठा बढ़ा रहा था। जो समय कंस को पतन के रास्ते पर ले जा रहा था वही कृष्ण को जगत् के कल्याण-मार्ग पर ले जाने में निमित्त बना है। क्या राम का, क्या रावण का समय, क्या कंस का, क्या कृष्ण का समय, क्या महावीर का, क्या गौशालक का समय अलग-अलग था? समय एक होते हुए भी सबने अपने पुरुषार्थ का अलग-अलग उपयोग किया।

समय अमूल्य है

समय अमूल्य है। अमूल्य के दो अर्थ हैं- 1. बिना मोल वाला अनमोल और 2. जिसका मूल्य न आँका जा सके वह अमूल्य। कुछ वस्तुएँ जीवन के लिए मूल्यवान होती हैं, किन्तु फिर भी उनका पैसा नहीं लिया जाता। हवा है आप कितनी भी ग्रहण करें, उसका पैसा नहीं आँका जाता। वह अमूल्य है। इस मिट्टी का कोई मोल नहीं, बाल्टी भर ले जाओ, कोई कहने वाला नहीं। कीचड़ है उसका कोई मोल नहीं। ऐसी सैंकड़ों चीजें हैं जिनका अभी मोल नहीं लिया जाता। इसी तरह समय के मूल्य का आकलन करना कठिन है। पापी व्यक्ति संयम को तुच्छ समझकर कर्म-बन्ध करता जा रहा है, उसके लिए समय का कोई मोल नहीं, पर उनके लिए समय अनमोल है जिन्हें एक-एक क्षण का उपयोग करना है। समय की कीमत समझाने के लिए तीर्थंकर भगवान महावीर कह रहे हैं-

चिच्चाण धणं च भारियं, पव्वइओ हि सि अणगारियं।
मा वंतं पुणो वि आइए, समयं गोयम! मा पमायए।।
अवउज्झिय मित्त-बंधवं, विउलं चेव धणोह-संचयं।
मा तं बिइयं गवेसए, समयं गोयम! मा पमायए।।

-उत्तराध्ययन सूत्र, 10.29-30

इसका पद्यानुवाद आचार्य भगवन्त श्री हस्तीमल जी म.सा. के द्वारा इस प्रकार किया गया है-

धन-पत्नी को छोड़, प्रव्रज्या से मुनिता के पथ (पर) बढ़कर।
वान्त भोग फिर मत पीना, गौतम! प्रमाद क्षणभर मत कर।।
बान्धव मित्र विपुल संचित, धन को पूरे मन से तजकर।
मत फिर से उनकी इच्छा धर, गौतम! प्रमाद क्षणभर मत कर।।

तीर्थंकर भगवान महावीर गणधर गौतम को लक्ष्य कर अथवा गौतम को सम्बोधन कर संसार के जीव मात्र को अनमोल संदेश दे रहे हैं- "चिच्चाण धणं च भारियं।" कहते हैं कि जैसे इस धन को धूल समझकर इस परिवार को बन्धन मानकर, इस राग और द्वेष को कर्म का कारण जानकर अभी छोड़ दिया है, उसे पुनः ग्रहण मत करना।

छोड़ना भी दो तरह का है। एक-थोड़े काल के लिए जैसे एक सामायिक, एक दया, एक पौषध करके कुछ समय के लिए सावद्य-क्रिया को छोड़ना। श्रावक कुछ समय के लिए या अंशतः छोड़ता है। दूसरा छोड़ना जीवन पर्यन्त के लिए होता है। अनगार जीवन पर्यन्त के लिए छोड़ता है। कुछ बाहर से छोड़ते हैं, पर मन में पकड़े रहते हैं। तीर्थंकर भगवान महावीर

कह रहे हैं- तूने छोड़ दिया है, उस छोड़े हुए को, वमन किए हुए की तरह फिर से ग्रहण करने की इच्छा मत करना।' अगर यह सम्यक् चारित्र सुख देने वाला है, मंजिल पर पहुँचाने वाला है तो छोड़े हुए धन, परिवार आदि को फिर से ग्रहण करने की इच्छा मत कर। थोड़ा सा कष्ट आया, परीक्षा की घड़ियाँ आईं तो फिसलने की मत सोच। जिसे त्याज्य मानता है, त्याज्य समझ कर छोड़ा है, फिर उस छोड़े हुए को क्यों ग्रहण करने की सोचता है?

राग की परम्परा टूटे

राग दुःख का कारण है। एक राग छूटता है, दूसरा लग जाता है। गौतम के लिए कहा- परम्परा का राग छूट गया। पहले जिस सिद्धान्त को मानने वाला था, जिन ग्रन्थों को जानने वाला था, उसके विपरीत कहने वालों को वह इन्द्रजालिया कहता था। एक राग में, एक मोह में बँधा था। वह राग छूट गया, किन्तु नया राग चालू हो गया। किससे? भगवान महावीर से। यद्यपि यह राग उतना बुरा नहीं, जितना मिथ्यात्व युक्त राग बुरा होता है। फिर भी राग तो राग है, मुक्ति को रोकता है।

राग के दो भेद करने होंगे- 1. पाप के प्रति राग डुबाने वाला है, 2. धर्म का राग मार्ग बताने वाला है। पर राग राग है। रोने में भी 'राग' है, गीत में भी 'राग' है, परन्तु रोने का राग अशुभ है, गीत गाने का राग मन को हर्षित करता है। लय दोनों में बँधेगी। विराग में कोई राग नहीं। राग छोड़ना है। यह अवश्य है कि छोड़ने के लिए धैर्य चाहिए। शास्त्र कह रहा है- जिसे छोड़ा है उसकी दूसरे रूप में गवेषणा मत कर। एक राग को छोड़कर दूसरा राग मत जोड़।

परिवर्तन दृष्टि का हो

दृष्टि में परिवर्तन होगा तो दूसरा राग नहीं जुड़ेगा। आवश्यकता दृष्टि परिवर्तन की है। किसी परिवार में एक रात्रि में बारह बजे बाबू साहब घर आये। पिता ने पूछा- 'बेटा! कहाँ गया था? मुझे आवारा फिरना अच्छा नहीं लगता।' दूसरा बेटा खर्च करके आ गया। पिता कहता है- 'बाबू साहब खर्च करना सरल है, कमाना कठिन है।' लड़के के मन में आया, जब तक इनके पास रहूँगा तब तक यह खटखट रहेगी। लड़के ने क्या किया? पिताजी को छोड़ा और पत्नी को पकड़ लिया। लेकिन फिर भी आराम नहीं है। एक का राग छोड़कर दूसरे का राग पकड़ने से समाधान नहीं हो सकता।

जिस अनुशासन को, मर्यादा को, नीति और व्यवहार को आप बन्धन मान रहे थे, उससे अलग रहने की बात सोची। क्या अलग हो जाने के बाद बन्धन नहीं रहा? आप घर में आने वाली बहू को समझाने लगे कि बहू मर्यादा का खयाल रखना, मर्यादा नहीं टूटने पाए। किन्तु बहू को यह सुहाता नहीं, तो क्या होता है, इसे आप सब जानते हो, मुझे इसका पता

नहीं। आप भले ही पिताजी-माताजी के बन्धन छोड़ दीजिए, क्या उसके बाद कोई बन्धन नहीं रहता? माता-पिता दो बात कहते थे, शायद अब पत्नी की सौ बातें सुननी पड़ती हैं।

एक बंधन छोड़ा, दूसरा स्वीकार कर लिया। यह उपाय नहीं है। कभी कोई पत्नी से अलग हो जाये और पुत्र का बन्धन पकड़ ले, फिर भी बन्धन तो बन्धन है। आप मेरी तरफ इशारा कर रहे हैं कि यह भी (साधुत्व भी) बंधन है, किन्तु यह बंधन आत्महितकारी है। इससे आप दूर रहना चाहते हैं।

आत्महित के लिए संयम : बंधन नहीं

आत्महित का बन्धन, बन्धन नहीं है। घर में रहिये, परिवार में रहिये, सन्त-जीवन में रहिये जो बन्धन, जो मर्यादाएँ आत्महित करने वाली हैं, वे छोड़ने की नहीं। दरवाजा जेल का भी बन्द होता है और घर का भी, परन्तु बंद होने में अन्तर है। पराधीनता के कारण जेल का बन्धन आपको बंधन लगता है, किन्तु पराधीनता नहीं लगती। जैसे आप अपनी मिल्कियत को, सामान को, माल को बचाने के लिए घर का कपाट लगाते हैं, ताला बन्द करते हैं, सोने को जाओ तो एक-एक कमरे को सम्भाल कर सोते हैं, कोई कीमती चीज़ बाहर तो नहीं रह गई, देखते हैं, किन्तु जेल का दरवाजा खुला मिल जाये तो निकल कर भागने की सोचते हैं। जो जेल के दरवाजे और घर के दरवाजे में फर्क है वही कर्म बन्ध और कर्म तोड़ने में फर्क है। कुछ बन्धन स्वयं स्वीकार किए जाते हैं, किन्तु हित के लिए किए जाते हैं।

इलायची कुमार : राग से विराग की ओर

आपने श्रवण किया है कि नटनी का नाच देखने के पश्चात् इलायची कुमार को माता-पिता बन्धन लगने लगे। इसके पहले तक माता-पिता के प्रति आदर और श्रद्धाभाव था। आज नटनी के प्रति राग होने से क्या हो गया? क्या माता-पिता का कथन अनुचित था- 'बेटा! तू किस खानदान का, तेरे पिता कैसी स्थिति वाले, कैसा उनका रुतबा? एक बार वे तुम्हारे लिए राजकुमारी को माँगने जाए तो कोई मना नहीं करे। पर बेटा यह तेरे खानदान का, तेरे रुतबे का काम नहीं।' किन्तु इलायची कुमार को क्या लग रहा है? उसको कलाकंद नहीं गुटखा अच्छा लग रहा है। म्लेच्छ मांसाहार पदार्थों का सेवन करते हैं, आश्चर्य नहीं, पर जो आर्य कुल वाले हैं, अच्छे खानदान वाले हैं वे विपरीत माँग करते हैं तब अनुचित लगता है। जिनको रोज अमृत मिलता है, वे ज़हर खाने की सोचें, यह कैसे उचित हो सकता है? पिता ने कोई खराब बात नहीं कही, परन्तु राग का नशा कब मानने वाला है।

वीतराग वाणी कोई खराब बात कह रही है? व्रत धारण करना, संयम ग्रहण करना क्या खराब है? पर कुछ लोग हैं जो इसे अच्छा मानते हैं, किन्तु मजबूरी से धारण नहीं कर

सकते और कुछ ऐसे भी हैं जो यह कहते हैं कि इनमें क्या रखा है?

आप अचम्भा करेंगे, इलायची कुमार ने घर छोड़ दिया, माता-पिता को छोड़ दिया। सेठ याचना करने गया। नट कह रहा है- 'आप अपनी मर्यादा छोड़ सकते हैं, मैं अपने खानदान की मर्यादा नहीं छोड़ सकता। मेरी लड़की का सम्बन्ध होगा तो उसी के साथ होगा जो नाचने वाला होगा।'

अब क्या करना? नाचना अच्छी बात है? कल की आई पत्नी कहती है- 'मैं आपकी माताजी के साथ नहीं रह सकती।' ठीक क्या है? कभी-कभी सही होते हुए भी कुछ लोग मजबूरी से मानते हैं तो कुछ पक्षधर होकर मानते हैं।

मैं नटनी के बिना नहीं रह सकता, भले ही नट बनना पड़े और इलायची कुमार नटनी के पास चला गया। अब तक वह अपनी शान-शौकत से अपने शरीर की सुकोमलता बना कर रह रहा था, अब नाचना चालू किया। नाचने में कितने दुःख झेलने पड़े। उन दुःखों को वह दुःख नहीं मान रहा है। आप दुःख किसे मानते हैं? आपको घर में दुःख नहीं लगता, दुःख तो महाराज बनने में लगता है। पैदल चलना पड़े, सर्दी-गर्मी सहनी पड़े, ठण्डा मिल गया तो ठण्डा खाना पड़े और न जाने कितने दुःख आप महाराज के गिना देंगे। अन्नदाता! सब ठीक है, पर साधुपणो खाण्डा की धार है। क्या घर में कोई तकलीफ नहीं? घर में सब आराम है? मैं कह यह रहा हूँ कि जहाँ राग जम गया, वहाँ दुःख दुःख नज़र नहीं आता। किन्तु अगर सत्कर्म के प्रति राग की भावना आ गई तो वह राग से मुक्ति दिला ही देगी। परन्तु सत्कर्म में ज्ञानपूर्वक जुड़ने वाले विरले होते हैं। अशुभ से शुभ में और शुभ से शुद्ध में बढ़ेंगे तो पाप की तरफ से राग छूटेगा। मैंने जो बात प्रारम्भ की, उसे समाप्त करूँ- बहुत बीती थोड़ी रही, थोड़ी छिन-छिन जाय। राग खत्म होने की बात आई। नट बना इलायची कुमार। एक बार नाचा, प्रहर बीत गया, शरीर थक रहा है, हड्डियाँ कडकड़ा रही हैं, इच्छा है अब राजा के द्वारा कुछ मिल जाय तो......?

एक बार, दो बार, तीन बार नाचते-नाचते सवेरा हो गया। प्रतिज्ञा के प्रति ऐसी तकलीफ देखने वाले भी हैं। नाचते-नाचते दिन उग गया। उसने एक सन्त को देखा। कहाँ ये और कहाँ मैं? ये महाराज भी जवान हैं, मैं भी जवान हूँ। महाराज को सोलह शृंगार से सजी बहन दान दे रही है, पर महाराज की गर्दन नीची है और मैंने नारी को पाने के लिए माता-पिता को छोड़ दिया, नाचना चालू कर दिया। चिन्तन चला, लगता है दाल में कुछ काला है। मुझे ऐसा नहीं करना चाहिए।

नट की दृष्टि राजा पर गई। कहाँ मैं और कहाँ राजा? राजा की नज़र भी नटनी पर है तो वह मुझे कहाँ मिलेगी? चिन्तन बदला। मैं नटनी को पाने के लिए व्यर्थ ही इतना श्रम कर

रहा हूँ, इतनी मेहनत अगर आत्म-कल्याण में करूँ तो कितना अच्छा हो?

दृष्टि बदली तो नाचते-नाचते वैराग्य आ गया। आपको सत्संग में सुनते-सुनते वैराग्य नहीं आया, पर आश्चर्य है कि इलायची कुमार को नाचते-नाचते वैराग्य आ गया। असली कारण है- भीतर का उपादान। जब तक दृष्टि का परिवर्तन नहीं होगा तब तक चाहे कितनी भी बार वीतराग वाणी सुन लें प्रभाव नहीं होगा, भीतर का उपादान नहीं जागेगा तब तक नब्बे महापुरुष क्या, नौ सौ महापुरुष मोक्ष चले जाएं, किन्तु उनका चरित्र सुनने से वैराग्य नहीं आएगा।

अब भी समय है

स्वयं के मन में सम्यक् चिन्तन चले तो राग का बन्धन कट सकता है। मानव! समय की कीमत कर। अनन्त काल बीत गया, अब भी समय है। यह समय चूक गये तो फिर आपके हाथ कुछ भी नहीं है। यह मानव जन्म, आर्य क्षेत्र, उत्तम कुल आपको मिला है। आप चिन्तन करेंगे, प्रमाद छोड़ेंगे और दृष्टि में परिवर्तन करके राग घटायेंगे तो समाधि-शान्ति प्राप्त कर सकेंगे। ■

(आगम-वाणी का शेषांश)

मायावी व्यक्ति सच्चाई को जानता हुआ भी पुरुषार्थ नहीं कर पाता तथा स्वयं को झूठी तसल्ली देता रहता है। लोभ कषाय सबसे बढ़कर है। इसके चंगुल में फँसा हुआ व्यक्ति स्वाधीनता को खोकर विषय एवं वस्तुओं के आधीन हो जाता है। ये चार कषाय उत्तेजना के समय मधुर लगते हैं, किन्तु इनका परिणाम दुःखद होता है। पाँच इन्द्रियाँ भी एक अपेक्षा से शत्रु कही गई हैं। क्योंकि व्यक्ति इन इन्द्रियों के कारण ही विषयों के प्रति आकृष्ट होता है। यद्यपि विरक्त चित्त वाले साधक को इन्द्रियों के विषय विचलित नहीं कर पाते, किन्तु असजग चित्त वाले व्यक्ति इन्द्रियों के विषयों के प्रति आकर्षित होकर अपनी समता और साधना को कलुषित कर देते हैं। इन्द्रियाँ वास्तव में तो विषयों का ज्ञान कराती हैं, किन्तु मन में रही मलिनता के कारण व्यक्ति उन विषयों के अनुकूल होने पर राग तथा प्रतिकूल होने पर द्वेष करने लगता है। इसी कारण इन्द्रियाँ भी शत्रु कही गई हैं। जो इन्द्रियों को एवं मन को नियंत्रित करके संयम के मार्ग पर आगे बढ़ता है वह चार कषायों को जीतता हुआ पूर्ण रूप से आत्म-जय को प्राप्त कर लेता है। इनको जीतने के उपायों का उल्लेख आगम में यथास्थान किया गया है। इन शत्रुओं को जीतने के प्रमुख उपायों में संयम, समता तथा अप्रमत्तता का समावेश होता है। जीतने का प्रारम्भ दृष्टि मोह को तोड़ने पर ही संभव होता है। **-प्रधान सम्पादक**

प्रवचन

भीतरी अन्धता है खतरनाक

मधुर व्याख्यानी श्रद्धेय श्री गौतममुनि जी म.सा.

मधुरव्याख्यानी श्रद्धेय श्री गौतममुनि जी म.सा. द्वारा चैत्र शुक्ला प्रतिपदा, वि. संवत् 2070 को नेत्रहीन विकास संस्थान, जोधपुर में फरमाए गए इस प्रवचन का सम्पादन सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल के कार्याध्यक्ष श्री सम्पतराजजी चौधरी द्वारा किया गया है।-**सम्पादक**

नव वर्ष की पावन वेला में हम 'नेत्रहीन विकास संस्थान' में एक नई दृष्टि, एक नई रोशनी और एक नई राह जानने के लिए एकत्रित हुए हैं। यह नई दृष्टि, एक दिव्य दृष्टि है जिसको प्रदान कराने वाले कोई साधारण व्यक्ति नहीं हैं, अपितु हमारे परम आराध्य तीर्थंकर देव ही हैं। जगत् के प्राणियों के दुःखों के निवारण के लिए जो ज्ञान की रोशनी उन्होंने हमें दी, वह एक ऐसी दिव्य दृष्टि है जिसके प्रकाश में हम आत्म-कल्याण की राह पर चलकर अनन्त आनन्द का साम्राज्य पा सकते हैं। तीर्थंकर प्रभु के इन अनन्त उपकारों के कारण शक्रेन्द्र अनेक विशेषणों से प्रभु की स्तुति करते हैं, जिसमें एक विशेषण है- चक्खुदयाणं अर्थात् ज्ञान चक्षु को देने वाले। हमें यह देखने की जरूरत है कि हम आँखों से अन्धे नहीं होने पर भी अंधेरे में तो नहीं हैं? अगर हम अंधेरे में हैं तो अंधेरी गलियों में ही भटकते रहेंगे और अपनी मंजिल पर जाने के लिए हमें सही रास्ता नहीं मिल सकेगा। इस अंधेरे को दूर करने के लिए हमें प्रभु से प्रदत्त ज्ञान का प्रकाश चाहिए जिसमें हम सत्य को देख सकें, अपने हिताहित का विवेक जगा सकें और आत्मोत्थान के लिए सम्यक् मार्ग का वरण कर परम आनन्द को प्राप्त कर सकें।

आज हम गम्भीरता से विचार करें कि जिनके आँखें नहीं हैं, क्या वे ही अन्धे हैं? क्या आँखों का न होना ही अन्धापन है? आँखों का न होना शरीर के एक अंग का अभाव है जो मुख्य रूप से बाहर की दुनिया से जुड़ा है। इससे शारीरिक क्षमता पर तो असर पड़ता है, लेकिन हमने देखा है कि कई नेत्रहीन व्यक्ति भी ऐसे-ऐसे काम करके सफलता की उन पायदानों को छू लेते हैं जो आँखों वालों के लिए भी दुःसाध्य होते हैं। नेत्रहीनों के उन कामों को देख कर नेत्र वाले भी दाँतों तले अंगुली दबाते हैं। 25 मई, 2001 को एक नेत्रहीन व्यक्ति एरिक वीहेनमायर एवरेस्ट पर्वत पर चढ़ने में सफल हो गया। 2012 के लंदन ऑलम्पिक में तीरन्दाजी में एक नेत्रहीन व्यक्ति ने प्रथम स्वर्ण पदक जीता। इस विद्यालय के

बालक भी आँखें नहीं होने के बावजूद न केवल अपने सारे काम स्वयं कर लेते हैं, बल्कि ऐसी वस्तुओं का निर्माण भी बड़ी कुशलता से कर लेते हैं जिसकी लोग भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं। इस तरह बिना आँखों वाले भी वह हासिल कर सकते हैं जो आँखों वाले करते हैं।

आँख का न होना शारीरिक दृष्टि से भले ही अंधापन हो, परन्तु जीवन में वास्तविक अंधा तो वह है जो अपने हिताहित का विचार किये बिना ही ऐसी प्रवृत्तियों में लगा रहता है, जिनके कारण भविष्य में उसे भयावह परिणाम भुगतने पड़ते हैं। जो लोग बाहर की आँखें होते हुए भी अन्दर की आँखें मूंदे हुए हैं उन लोगों को मैं अन्धा ठहराने वाला कौन हूँ? इसका निर्णय तो वे अपने अन्तरमन को टटोल कर स्वयं ही कर सकते हैं। जिन लोगों को अपनी गलतियाँ नहीं दिखतीं, उनमें हृदय और मस्तिष्क का अंधापन है। कोई विषयान्ध है तो कोई ममता का अंधापन लिए हुए है। कहीं मोह का अंधापन है तो कहीं मद का अंधापन है। कहीं धन के कारण अन्धापन है तो कहीं आस्था का अंधापन है। कहीं माता-पिता अन्धे हैं, जिन्हें पता ही नहीं कि उनके बच्चों में कैसे संस्कार पनप रहे हैं और यदि पता चल भी जाए तो वे उस ओर से आँखें मूंद लेते हैं। कहीं युवक और युवतियाँ अन्धे हैं, जिन्हें जवानी के नशे में न अपने चरित्र का ध्यान है और न ही अपने कर्त्तव्यों की पहचान है। कहीं अधिकारी और शासक अन्धे हैं जो अपने अधिकारों के मद में और भ्रष्टाचार के समुद्र में आकंठ डूबे हुए हैं। ऐसा मालूम होता है कि चारों ओर मानो अन्धेपन की परम्पराएँ चल रही हैं। यह अन्धापन आँखों के अन्धेपन से कहीं अधिक घातक है जो व्यक्ति ही नहीं, सारे देश और समाज को अवनति के गर्त में डुबा रहा है।

यह अन्धापन निरन्तर हमें दुःख, निराशा और दुर्गति की ओर ले जा रहा है। इस अन्धेपन को मिटाने के लिए हमें ज्ञानचक्षु चाहिए। प्रभु ने कहा है कि जो व्यक्ति ज्ञान सम्पन्न नहीं होगा, वह आत्मा-परमात्मा को कैसे जानेगा? जिसे जीव-अजीव का ही ज्ञान नहीं है, वह अहिंसा की एवं दया की पालना कैसे करेगा? ज्ञान के अभाव में उसकी शुभाशुभ प्रवृत्तियाँ अंधी ही रहेंगी। जो जानेगा नहीं, वह संयम को अंगीकार कैसे करेगा? बिना अंगीकार किये वह अपना कल्याण भी कैसे करेगा? जैनागमों में तीन तरह की दृष्टि वालों का वर्णन आता है। एक, सम्यग्दृष्टि जीव है, जिसमें सम्यग्ज्ञान और दर्शन होता है। दूसरा, मिथ्या दृष्टि जीव है जो अज्ञानी है। तीसरा, जिसमें मिश्र प्रवृत्ति होती है, जो सम्यग्मिथ्यादृष्टि कहलाता है। शास्त्रों में जिसके ज्ञान रूपी दृष्टि होती है उसे ही सही रूप में दृष्टि वाला कहा गया है। ज्ञान की महिमा बड़ी भारी है। जब तक ज्ञान रूपी सूर्य उदय नहीं होता, तब तक हम अज्ञान रूपी अंधकार से घिरे रहते हैं। ज्ञान चक्षुओं से ही हमें हिताहित का भान होता है। ज्ञान से ही आत्मा के स्वाभाविक गुण- क्षमा, मैत्री, करुणा, प्रमोद आदि भावनाएँ जीवन में

उद्घाटित होती हैं। ज्ञान से ही जीव राग–द्वेष से विमुख होता है और श्रेय में अनुरक्त होता है। इस तरह तीर्थंकरों द्वारा दिये गये ज्ञान से हमें अपना अन्धापन मिटाना है।

जिनके द्रव्य चक्षु नहीं हैं, उनसे मैं कहना चाहता हूँ कि आँखों के अभाव में अपने जीवन में निराशा न लाएँ। जीवन के बारे में अपना रवैया हमेशा सकारात्मक रखें। जीवन में प्रगति करने के लिए आँखों का न होना बहुत बड़ी बाधा नहीं है। प्रभु से सम्बन्ध जोड़ने के लिए हम ध्यान, प्रार्थना या जप की साधना आँखें बन्द करके ही करते हैं, क्योंकि इससे साधना में एकाग्रता आती है। हम देखते हैं कि खुली आँखों से मन की चंचलता बढ़ती है और ऊर्जा का बिखराव होता है। जिनकी आँखें नहीं होती है, उनका संकल्प बल अधिक दृढ़ हो सकता है। इस सम्बन्ध में मुझे आत्मज्ञानी सन्त श्री शरणानन्दजी महाराज की याद आती है, जो बचपन से ही प्रज्ञा चक्षु थे। किशोरवय में उनको अपने नेत्रों की ज्योति का अभाव बहुत खलता था। उन्होंने अपनी यह पीड़ा अपने गुरुजी से भी व्यक्त की और कहा कि अगर मेरी आँखें होतीं तो मैं भी वेद, उपनिषद् आदि ग्रन्थों का अध्ययन करता। गुरु ने उन्हें समझाते हुए कहा कि–"जिसकी बुद्धि स्थिर होती है, उसमें श्रुति भगवती स्वयं ही अवतरित हो जाती है। क्यों तुम नेत्रहीनता की व्यथा व्यर्थ में ही पाल रहे हो? अपने विकल्पों का त्याग कर दो।" गुरु के वचनों पर श्रद्धा करके शरणानन्द जी जब विकल्पों से मुक्त हो गये तो उनके अन्तर में एक दिव्य अनुभूतिजन्य ज्ञान जागृत हो गया। भक्त शिरोमणि सूरदास भी प्रज्ञा चक्षु थे। प्रभु भक्ति में विह्वल होकर उन्होंने अनेक भक्ति पदों की रचना की। उनके पद स्वान्तःसुखाय थे। जब वे रचना करके पदों को गाते थे तो उन्हें पता नहीं था कि उनके पद काव्य की सर्वोत्तम रचना के रूप में मान्य होंगे। आज देश में कोई ऐसा नहीं है जो सूरदास के नाम से परिचित न हो। अन्धे–व्यक्तियों को सम्मान की दृष्टि से देखने के लिये उन्हें सूरदास के नाम से पुकारा जाता है।

अधिक दूर जाने की आवश्यकता नहीं। मैं जिनधर्म की एक साधिका उमरावबाई जी के बारे में आपको बताना चाहता हूँ जो जन्म से ही प्रज्ञाचक्षु हैं। अपने धार्मिक संस्कारों से उन्होंने आगम ग्रन्थों का अभ्यास किया। आज 80 वर्ष की आयु में उन्हें करीब 700 श्लोक प्रमाण आगम की गाथाएँ कंठस्थ हैं और ज्ञान सीखने की ललक उसी तरह से बरकरार है। अखण्ड बालब्रह्मचारिणी उस आत्मसाधिका के वचन भी मंत्र की तरह सिद्ध होते हैं। हमारे अतीत के इतिहास में झाँकें तो मालूम पड़ेगा कि हमारे पूर्वाचार्य श्री हमीरमल जी महाराज के सान्निध्य में एक आत्मज्ञानी श्रावक थे– विनयचन्द जी कुम्भट, जो प्रज्ञा चक्षु थे। गुरु से ज्ञान प्राप्त करके उन्होंने भक्ति और ज्ञान से परिपूर्ण चौबीस तीर्थंकरों की स्तुति की एक

अद्वितीय रचना की जो 'विनयचन्द चौबीसी' के नाम से विख्यात है। ऐसे ही जैन दर्शन के एक विश्रुत विद्वान हुए हैं- पंडित सुखलाल जी संघवी, जो बचपन में ही प्रज्ञाचक्षु हो गये। उन्होंने अपने इस शारीरिक अभाव को कभी भी ज्ञान प्राप्ति में बाधक नहीं बनने दिया। जैन दर्शन पर उन्होंने उत्कृष्ट साहित्य की सर्जना की है। नेत्रहीन होने पर भी वे कई वर्षों तक विश्वविद्यालय में जैन दर्शन के प्राध्यापक रहे। इस तरह अनेक प्रज्ञाचक्षु व्यक्तियों ने अपने ज्ञान चक्षुओं से जीवन में उत्कर्ष को प्राप्त किया। आँखों में तो द्रव्य प्रकाश है, पर जीवन का प्रकाश तो अन्तर में ही विद्यमान है। अपने संकल्प बल से उसे जागृत करना होता है। किसी कवि ने ठीक ही कहा है-

मंजिलें उन्हीं को मिलती हैं, जिनके सपनों में जान होती है।
पंख से कुछ नहीं होता, हौसलों से उड़ान होती है।।

आँखों के अभाव में निराश होना भी एक तरह से अन्तर का अन्धकार है। अपने अभावों पर आँसू बहाना कायरता है। जीवन में हर कदम पर शूल भी मिलें तो उन्हें भी प्यार कर दिल से लगालें। यदि आपके स्वप्न घायल हो गये हैं तो भी निराश न हों। जिसने चलने की ठान ली वह गिरेगा भी तो उठकर चल पड़ेगा। इसलिए अभावों के बावजूद भी चलते रहो, गिर-गिर कर उठते रहो और सम्भल कर चलो। रास्ते में रुक जाना मरण है। आपके पास गुप्त आत्मिक शक्तियाँ हैं, उन्हें उद्घाटित करना है। सफलता, उत्साह और आनन्द आपका जन्म-सिद्ध अधिकार है। आपके जन्म के साथ आपके पास उन्नति की सीढ़ी रख दी गई है, जिसको पहचान कर अपने पुरुषार्थ से उस पर चढ़कर अपने अधिकारों को प्राप्त करना है। आपमें एक बलवान आत्मा का निवास है। उसके बल को प्रकट करना है। इस विश्वास की ज्योति को सदा जलाए रखिए और ईश्वर से प्रार्थना कीजिये कि "जब जिन्दगी के कगारों की हरियाली सूखने लगे, पक्षियों का कलरव बन्द होने लगे, आत्मीयजन अकेला छोड़ दें और आसमान की सारी नाराज़गी बरसने लगे तो, हे प्रभो! तुम मुझ पर इतनी कृपा करना कि मेरे होठों की हँसी कायम रहे और विश्वास की ज्योति जलती रहे।" आप अपनी असफलता में भी मुस्कराओगे तो आत्मबल प्रकट होकर ही रहेगा। इस प्रार्थना को अपने गीतों में ढाल लें और तन्मय होकर गायें। एक कवि ने कहा- "माना कि अन्धेरा घना है, पर दीप जलाना कब मना है।" आँख के अन्धेरे को जीतने के लिए भी ज्ञान का दीप जलाना होगा। अपने प्रति अखण्ड विश्वास से ही जीवन बनता है। कहा है- "**नास्ति चात्मसमं बलम्**" अर्थात् अपने भरोसे जैसी दूसरी कोई शक्ति नहीं है।

प्रभु ने कहा है कि आत्मा अनन्तशक्ति का भंडार है। इस पर विश्वास करके

निर्बलता की भावना मन में कभी नहीं लानी चाहिए। क्षमा, प्रेम, मैत्री, साहस, शान्ति, उत्साह, विवेक आदि के सारे स्रोत जीवन की ओर प्रवाहित हो रहे हैं। मनुष्य मात्र स्वभावतः पवित्र और शुद्ध है, परन्तु हमने अपने ही कृत्यों से अपने को अपवित्र कर दिया है जिससे हमारे स्वाभाविक गुण ओझल हो गये हैं। अतः सोचिये कि "शरीर के अंगों का अभाव मेरा अभाव नहीं है, मैं तो पवित्र, परिपूर्ण आनन्दमयी आत्मा हूँ।"

एक अंधेरा लाख सितारे, एक निराशा लाख सहारे।
सबसे बड़ी सौगात है जीवन, नादान है जो जीवन से हारे।।
बीते कल की खातिर अब तू, आने वाला कल मत खोना।
जाने कौन कहाँ से आकर, राहें तेरी फिर से संवारे।।

इस विद्यालय में सहयोग करने वाले आपकी राहें संवारने का प्रयास कर रहे हैं। उनके प्रयास अभिनन्दनीय हैं। ये समाज को एक अंधे युग से बचाते हैं। फिर भी नेत्रहीनों के लिए नेत्र वालों को जितना करना चाहिए उतना नहीं हो रहा है। नेत्रहीनों के मामले में हम अभी भी अन्धे हैं। उनको सहारा देकर सड़क पार करा देना ही काफी नहीं है, उनकी क्षमताओं को बढ़ाने का मौका भी दिया जाना चाहिए। वे छड़ी लेकर इसलिए चलते हैं, क्योंकि हमसे टकरायें नहीं। वे जब हमारा इतना ध्यान रखते हैं तो हम अंधे क्यों बने हुए हैं कि उन्हें जीवन की राह पर नहीं चला सकें?

जगत् करता है रोशनी की महिमा का गान,
नहीं उसे अंधेरे की महिमा का ज्ञान।
अंधेरी रात में जब भीषण वृष्टि होती है,
जल से सारी धरा आप्लावित होती है।
तब गहन अंधेरे में श्री कृष्ण आते हैं,
प्रकाश देने अंधेरे को अपनाते हैं।
कभी अंधेरे को भी गहराई से देखो,
उसकी सलौनी सलवटों को भी देखो।
बैठकर करो कभी अंधेरे में ध्यान,
अंधेरे में भी प्रकाश के रंगों का होगा भान।।

लुकमान से किसी से पूछा- "आपने विद्वत्ता किससे सीखी?"

लुकमान ने उत्तर दिया-"अन्धों से, जो जब तक जगह को टटोल नहीं लेते, आगे पग नहीं बढ़ाते।" अन्धों ने हमें यह विवेक दृष्टि दी, बदले में आप भी उन्हें कुछ देंगे? ■

दार्शनिक-लेख

जैन दर्शन में हेमचन्द्रसूरि कृत प्रमाण-विवेचन

प्रो. सागरमल जैन

जैनदर्शन में प्रमाण चर्चा एक परवर्ती अवधारणा है। नैयायिकों और बौद्धों के पश्चात् ही जैनों ने प्रमाण-विवेचन को अपना विषय बनाया है। सम्भवतः इसका काल लगभग ईसा की चौथी-पाँचवी शताब्दी से प्रारम्भ होता है, क्योंकि लगभग तीसरी शताब्दी के जैन ग्रन्थ तत्त्वार्थसूत्र में 'तत्प्रमाणे' सूत्र द्वारा ज्ञान को प्रमाण कहा गया है। जैन आगमों में भी पमाण (प्रमाण) शब्द का उल्लेख तो मिलता है, किन्तु उनमें प्रायः प्रमाण से क्षेत्रगत या कालगत परिमाण को ही सूचित किया गया है। प्राचीन स्तर के दिगम्बर ग्रन्थों में भी उक्त प्रमाण शब्द वस्तुतः नापतौल की ईकाई के रूप में ही देखा गया है। आगमों में केवल एक स्थान पर ही चार प्रमाणों की चर्चा हुई है, किन्तु वे चार प्रमाण वस्तुतः नैयायिकों के प्रत्यक्ष, अनुमान शब्द और उपमान प्रमाण के समरूप ही है। अतः यह कहा जा सकता है कि जैनों में प्रमाण चर्चा का विकास एक परवर्ती घटना है। आगमों में उक्त प्रमाण चर्चा का विशेष उल्लेख हमें नहीं मिलता है। जैसा कि हमने पूर्व में कहा आगमों में मात्र एक स्थान पर नैयायिकों का अनुसरण करते हुए चार प्रमाणों का उल्लेख देखा जाता है।

कालक्रम की अपेक्षा से आगमयुग के पश्चात् जैन दर्शन में 'अनेकान्त स्थापना' का युग आता है। इसका काल लगभग चौथी शताब्दी से प्रारम्भ करके आठवीं-नवीं शताब्दी तक जाता है। इस काल खण्ड के प्रथम दार्शनिक सिद्धसेन दिवाकर और दिगम्बर परम्परा की अपेक्षा से समन्तभद्र माने जा सकते हैं। इस युग में प्रमाण चर्चा का विकास हो रहा था। इस युग में प्रमाण को परिभाषित करते हुए जैनाचार्यों ने कहा "प्रमीयते येन तत् प्रमाणम्" अर्थात् जिसके द्वारा जाना जाता है वह प्रमाण है, इस प्रकार ज्ञान का साधन प्रमाण है। तत्त्वार्थ सूत्र में सर्वप्रथम प्रत्यक्ष और परोक्ष ऐसे दो प्रमाणों का ही उल्लेख मिलता है, उसमें जैनों के द्वारा मान्य पाँच ज्ञानों को ही इन दो प्रमाणों में वर्गीकृत किया गया है। कालान्तर में 'नन्दीसूत्र' में प्रत्यक्ष प्रमाण के दो विभाग किये गये हैं- 1. पारमार्थिक प्रत्यक्ष और 2. सांव्यावहारिक प्रत्यक्ष। तत्त्वार्थसूत्र में प्रत्यक्ष के ऐसे दो विभाग नहीं करके मात्र पाँच ज्ञानों में मति और श्रुतज्ञान को परोक्ष तथा अवधि, मनःपर्यव तथा केवलज्ञान को प्रत्यक्ष कहा गया है। यह स्पष्ट है कि जैनों ने लगभग पाँचवी शताब्दी में ही ऐन्द्रियक प्रत्यक्ष को जो कि पूर्व में परोक्ष ज्ञान के अन्तर्गत ही आता था, लोक परम्परा का अनुसरण करते हुए

सांव्यावहारिक प्रत्यक्ष नाम दिया। इस प्रकार प्रत्यक्ष के दो भाग सुनिश्चित हुए- सांव्यावहारिकप्रत्यक्ष और पारमार्थिकप्रत्यक्ष। इनमें पारमार्थिकप्रत्यक्ष को आत्मिकप्रत्यक्ष और सांव्यावहारिकप्रत्यक्ष को ऐन्द्रियकप्रत्यक्ष भी कहा गया। परोक्षप्रमाण के विभागों की चर्चा परवर्तीकाल में उठी थी। दिगम्बर परम्परा में अकलंक ने प्रायः आठवीं शती में और श्वेताम्बर परम्परा में सिद्धर्षि ने लगभग नवीं शताब्दी में परोक्ष प्रमाण के पाँच भेद किये, जो क्रमशः इस प्रकार हैं- 1. स्मृति, 2. प्रत्यभिज्ञान (पहचानना), 3. तर्क, 4. अनुमान और 5. आगम। दिगम्बर परम्परा में आचार्य अकलंक ने भी प्रत्यक्ष को मिलाकर अपनी कृतियों में छह प्रमाणों की चर्चा की थी- 1. प्रत्यक्ष, 2. स्मृति, 3. प्रत्यभिज्ञान, 4. तर्क, 5. अनुमान और 6. आगम। किन्तु इस व्यवस्था के पूर्व जैनों में भी प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम या शब्द- ऐसे तीन ही प्रमाण माने थे। यद्यपि जैन आगमों में उपमान को प्रमाण के रूप में स्वीकार किया गया था, किन्तु कालान्तर में इसका अन्तर्भाव अनुमान में करके स्वतंत्र प्रमाण के रूप में इसका परित्याग कर दिया गया। जहाँ तक भारतीय चिन्तन का प्रश्न है, उसमें सामान्यतया जैनों को तीन प्रमाण मानने वाला ही स्वीकार किया गया है। भारतीय चिन्तन में प्रमाणों की संख्या सम्बन्धी चर्चा को लेकर विभिन्न दर्शनों में इस प्रकार की व्यवस्था रही है-

1. **चार्वाक**- प्रत्यक्ष
2. **वैशेषिक एवं बौद्ध दर्शन**- 1. प्रत्यक्ष और 2. अनुमान
3. **सांख्य एवं प्राचीन जैन दर्शन**- 1. प्रत्यक्ष, 2. अनुमान और 3. आगम या शब्द
4. **न्यायदर्शन**- 1.प्रत्यक्ष, 2. अनुमान, 3. शब्द और 4. उपमान
5. **मीमांसादर्शन (प्रभाकर सम्प्रदाय)**- 1. प्रत्यक्ष, 2. अनुमान, 3. शब्द, 4. उपमान और 5. अर्थापत्ति
6. **मीमांसादर्शन का भाट्ट सम्प्रदाय और वेदान्त**- 1. प्रत्यक्ष, 2. अनुमान, 3. शब्द, 4. उपमान, 5. अर्थापत्ति और 6. अभाव

प्रमाण लक्षण

सामान्यतः 'प्रमाण' शब्द से प्रामाणिक ज्ञान का ही अर्थबोध होता है। किन्तु कौनसा ज्ञान प्रामाणिक होगा इसके लिये विभिन्न दर्शनों में प्रमाण के लक्षणों का निरूपण किया गया है। सामान्यतः उस ज्ञान को ही प्रमाण माना जा सकता था, जो ज्ञान किसी अन्य ज्ञान या प्रमाण से खण्डित न हो, और वस्तु के यथार्थ स्वरूप को प्रकट करे। किन्तु कालान्तर में प्रमाण के लक्षणों की चर्चा काफी विकसित हुई। सामान्यतः इसमें प्रमाण के स्वरूप को लेकर दो वर्ग सामने आये- प्रथम वर्ग में नैयायिकों (न्यायदर्शन) का कहना यह था कि

प्रमाण वह है जो पदार्थ को उसके यथार्थ रूप में जानता हो, किन्तु इसके विपरीत दूसरे वर्ग में बौद्धों का कहना यह था कि प्रमाण वह है जो अपने स्वानुभूत ज्ञान को ही प्रामाणिक रूप से जानता है। इस दूसरे वर्ग ने प्रमाण के संबंध में यह निश्चित किया कि 'स्वानुभूत ज्ञान ही प्रमाण है।' इस प्रकार प्रमाण-लक्षण के सन्दर्भ में पुनः दो मत देखे जाते हैं। जहाँ बौद्धों ने ज्ञान को प्रमाण मानकर भी ज्ञानाकारता/तदाकारता को प्रमाण रूप माना जबकि जैनों ने तदाकारता का खण्डन करके स्व-पर प्रकाशक ज्ञान को प्रमाण रूप माना। जहाँ नैयायिकों कहना था कि ज्ञान 'पर' (पदार्थ) प्रकाशक है, अर्थात् ज्ञान के करण (साधन) ही प्रमाण होते हैं। वे 'इन्द्रियार्थ सन्निकर्ष' को प्रमाण मानते थे। जहाँ तत्त्वार्थ सूत्र में जैनों ने "तत् प्रमाणे" कहकर ज्ञान को प्रमाण मानने के मत का समर्थन किया था, वहाँ नैयायिकों ज्ञान के करण अर्थात् साधन-इन्द्रिय और पदार्थ के सन्निकर्ष ही प्रमाण माना। बौद्ध और जैन दोनों ज्ञान को ही प्रमाण मानते थे। जैनों के अनुसार न तो बौद्धों द्वारा मान्य निर्विकल्पक ज्ञान प्रमाण है और न नैयायिकों द्वारा मान्य 'इन्द्रियार्थसन्निकर्ष' ही प्रमाण है। जैनाचार्यों ने इस सम्बन्ध में बौद्धों और नैयायिकों दोनों की आलोचना की है। नैयायिकों के मत के अनुसार प्रमाण 'पर' (पदार्थ) का प्रकाशक अर्थात् पदार्थ का ज्ञान कराने वाला होता है, जबकि बौद्धों ने यह माना था कि प्रमाण 'स्व' का अर्थात् अपने ज्ञान का ही ज्ञान कराता है, अर्थात् वह स्व-प्रकाशक है। इस प्रकार प्रमाण के लक्षण में दो प्रकार की अवधारणाएँ बनीं- एक प्रमाण स्व-प्रकाशक है, और दूसरी प्रमाण 'पर' (पदार्थ)- प्रकाशक है। प्रमाण पर-प्रकाशक है, इस मत के समर्थक नैयायिक और वैशेषिक दर्शन थे, जबकि प्रमाण मात्र स्व प्रकाशक है इस मत के समर्थक विज्ञानवादी बौद्ध थे। जैनों के सामने जब प्रमाण के स्वप्रकाशकत्व और परप्रकाशकत्व का प्रश्न आया तो उन्होंने अपनी अनेकान्त दृष्टि के आधार पर उसे स्व-पर प्रकाशक माना। सर्वप्रथम श्वेताम्बर परम्परा में आचार्य सिद्धसेन ने न्यायावतार (1) में और दिगम्बर परम्परा में आचार्य पूज्यपाद देवनन्दी ने तत्त्वार्थसूत्र की सर्वार्थसिद्धि नामक टीका (1/10) में इस मत का समर्थन किया और इस प्रकार प्रमाण का जैनों ने जो लक्षण निर्धारित किया, उसमें उन्होंने उसे 'स्व' अर्थात् अपने ज्ञान का तथा 'पर' अर्थात् पदार्थ-ज्ञान का प्रकाशक माना। बौद्ध पदार्थ ज्ञान को इसलिए प्रमाणभूत नहीं मानते थे कि विज्ञानवादी बौद्ध ज्ञान से पृथक् ज्ञेय अर्थात् पदार्थ की स्वतन्त्र सत्ता ही नहीं मानते थे।

आचार्य सिद्धसेन ने न्यायावतार की निम्न कारिका में इस बात को स्पष्ट किया है-

प्रमाणं स्वपराभासि ज्ञानं, बाधविवर्जितम्।
प्रत्यक्षं च परोक्षं च द्विधा, मेयविनिश्चयात्।।

-न्यायावतार 1

इस प्रकार न्यायावतार में प्रमाण का लक्षण करते हुए उसे स्व-पर दोनों का प्रकाशक माना गया है। साथ ही उसे बाधविवर्जित अर्थात् स्वतः सुसंगत भी माना गया है, सुसंगत होने का अर्थ है अविसंवादित या पारस्परिक विरोध से रहित होना। इस प्रकार प्रारम्भ में प्रमाण के दो मुख्य लक्षण माने गये। इसके पश्चात् अकलंक ने बौद्ध परम्परा का अनुसरण करते हुए अष्टशती में बाधविवर्जित अर्थात् अविसंवादिता को भी प्रमाण का लक्षण स्वीकार किया गया। इसी क्रम में मीमांसकों के प्रभाव से अकलंक ने अनधिगतार्थक या अपूर्व को भी प्रमाण-लक्षण में संनिविष्ट किया गया। अकलंक और माणिक्यनंदी ने प्रमाण लक्षण के रूप में 'अपूर्व' विशेषण को अधिक महत्त्व दिया था। इस प्रकार जैन परम्परा में प्रारम्भ में प्रमाण के चार लक्षण माने गए- 1. स्वप्रकाशक, 2. परप्रकाशक, 3. बाधविवर्जित या असंविवादी, 4. अनधिगतार्थक या अपूर्व। लगभग हेमचन्द्र के पूर्व तक जैन परम्परा में प्रमाण के यही चार लक्षण माने गये थे, किन्तु हेमचन्द्र इन्हें अन्य शब्दावली में प्रकट किया है, उनके अनुसार सम्यक् अर्थनिर्णय (सम्यगर्थनिर्णयः प्रमाणम्) ही प्रमाण है।

यद्यपि यह ठीक है कि हेमचन्द्र ने अपने प्रमाण-लक्षण-निरूपण में नयी शब्दावली का प्रयोग किया है, किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि उन्होंने अपने पूर्व के जैनाचार्यों के प्रमाण-लक्षणों को पूरी तरह से छोड़ दिया है। यद्यपि इतना अवश्य है कि हेमचन्द्र ने दिगम्बराचार्य विद्यानन्द और श्वेताम्बराचार्य अभयदेवसूरि और वादिदेवसूरि का अनुसरण करके अपने प्रमाणलक्षण में अपूर्व पद को स्थान नहीं दिया है। साथ ही पं. सुखलालजी के शब्दों में उन्होंने 'स्व' पद को, जो सभी पूर्ववर्ती जैनाचार्यों की परिभाषा में था, निकाल दिया। अवभास, व्यवसाय आदि पदों का भी स्पष्ट निर्देश नहीं किया और उमास्वाति, धर्मकीर्ति, भासर्वज्ञ आदि के 'सम्यक्' पद को अपनाकर 'सम्यगर्थनिर्णयः' प्रमाणम् के रूप में अपना-प्रमाण लक्षण प्रस्तुत किया। इस परिभाषा या प्रमाण-लक्षण में सम्यक् पद किसी सीमा तक पूर्ववर्ती आचार्यों द्वारा प्रयुक्त बाधविवर्जित या अविसंवादिता का ही पर्याय माना जा सकता है। 'अर्थ' शब्द का प्रयोग बौद्धों के विज्ञानवादी दृष्टिकोण का खण्डन करते हुए प्रमाण के 'पर' अर्थात् 'वस्तु' के अवबोधक होने का सूचक है, जो जैनों के वस्तुवादी (Realistic) दृष्टिकोण का समर्थक भी है।

पुनः 'निर्णय' शब्द जहाँ एक ओर अवभास, व्यवसाय आदि का सूचक है, वहीं दूसरी ओर वह प्रकारान्तर से प्रमाण के 'स्वप्रकाशक' होने का भी सूचक है। इस प्रकार प्रमाण-लक्षण-निरूपण में अनधिगतार्थक या अपूर्वार्थग्राहक होना ही एक ऐसा लक्षण है, जिसका आचार्य हेमचन्द्र ने पूर्ववर्ती श्वेताम्बर आचार्यों के समान परित्याग किया है। वस्तुतः स्मृति को प्रमाण मानने वाले जैनाचार्यों को यह लक्षण आवश्यक प्रतीत नहीं हुआ। श्वेताम्बर

परम्परा ने तो उसे कभी स्वीकार ही नहीं किया। दिगम्बर परम्परा में भी अकलंक और माणिक्यनन्दी के पश्चात् विद्यानन्द ने इसका परित्याग कर दिया। इस प्रकार आचार्य हेमचन्द्र ने अपने पूर्वाचार्यों के दृष्टिकोणों का सम्मान करते हुए और उनके प्रमाण-लक्षणों को सन्निविष्ट करते हुए प्रमाणमीमांसा में 'प्रमाण' की एक विशिष्ट परिभाषा प्रस्तुत की है।

आचार्य हेमचन्द्र ने अपने प्रमाण-लक्षण-निरूपण में 'स्व' पद क्यों नहीं रखा, इसका उत्तर स्वयं उन्होंने प्रथम अध्याय के प्रथम आह्निक के चतुर्थ पद की स्वोपज्ञ टीका में दिया है, उन्होंने बताया है कि संशयज्ञान, विपर्ययज्ञान भी स्व-प्रकाशक ही है, अतः स्वपद का प्रमाण-लक्षण में प्रवेश अनावश्यक है। पं. सुखलालजी के अनुसार ऐसा करके हेमचन्द्रसूरि ने एक ओर अपने विचार-स्वातन्त्र्य को स्पष्ट किया, वहीं दूसरी ओर पूर्वाचार्यों के मत का खण्डन न करके, 'स्व' पद के प्रयोग करने की उनकी दृष्टि दिखाकर उनके प्रति आदर भी व्यक्त किया, साथ ही ज्ञान के स्वभावतः स्व-प्रकाशक होने से उन्होंने अपने प्रमाण-लक्षण में 'स्व' पद नहीं रखा।

इसी प्रकार आचार्य हेमचन्द्र ने अपने प्रमाण-लक्षण में 'अधिगत' या 'अपूर्व' पद क्यों नहीं रखा? इसका उत्तर भी प्रमाणमीमांसा में धारावाहिक ज्ञान के प्रामाण्य और अप्रामाण्य की चर्चा में मिल जाता है। भारतीय दर्शन में धारावाहिक ज्ञान के प्रामाण्य और अप्रामाण्य को लेकर दो दृष्टिकोण उपलब्ध होते हैं। एक ओर न्याय-वैशेषिक और मीमांसकों के प्रभाकर एवं भाट्ट सम्प्रदाय कुछ सूक्ष्म मतभेदों को छोड़कर सामान्यतया धारावाहिक ज्ञान के प्रामाण्य को स्वीकार करते हैं, दूसरी ओर बौद्ध परम्परा सामान्य-व्यक्ति (प्रमाता) के ज्ञान में सूक्ष्म काल-भेद का ग्रहण नहीं होने से धारावाहिक ज्ञान को अप्रमाण मानती है। कुमारिल भट्ट की परम्परा भी अपने प्रमाण-लक्षण में अपूर्व पद रखने के कारण सूक्ष्म काल-कला के भान (बोध) को मानकर ही उसमें प्रामाण्य की उत्पत्ति मानती है। इसी प्रकार बौद्ध दार्शनिक अर्चट ने अपने हेतुबिन्दु की टीका में सूक्ष्म-कला के भान के कारण योगियों के धारावाहिक ज्ञान को प्रमाण माना है।

जहाँ तक जैनों का प्रश्न है, सामान्यतया कुछ दिगम्बर आचार्यों ने अपने प्रमाण-लक्षण में 'अपूर्व' पद को स्थान दिया है, अतः उनके अनुसार भी धारावाहिक ज्ञान, जब क्षण भेदादि की स्थिति में विशेष का बोध कराता हो और विशिष्ट प्रमाजनक हो तभी प्रमाण कहा जाता है। इसके विपरीत श्वेताम्बर परम्परा के आचार्य अपने प्रमाण-लक्षण में 'अपूर्व' पद नहीं रखते हैं और स्मृति के समान धारावाहिक ज्ञान को भी प्रमाण मानते हैं। श्वेताम्बर आचार्यों में हेमचन्द्र ने अपने प्रमाणलक्षण में 'अपूर्व' पद क्यों नहीं रखा, इसका उत्तर भी

उनकी प्रमाणमीमांसा में मिल जाता है। आचार्य स्वयं ही स्वोपज्ञ टीका में इस सम्बन्ध में पूर्वपक्ष की उद्भावना करके उत्तर देते हैं। आचार्य हेमचन्द्र ने कहा कि यदि धारावाहिक ज्ञान और स्मृति प्रमाण है तो फिर प्रमाण के लक्षण में 'अपूर्व' या 'अनधिगत' पद रखना निरर्थक हो जाता है। पं. सुखलालजी का कथन है कि ''श्वेताम्बर आचार्यों में हेमचन्द्र की खास विशेषता यह है कि उन्होंने गृहीतग्राही और ग्रहीष्यमाणग्राही में समत्व दिखाकर सभी धारावाहिक ज्ञानों में प्रामाण्य का जो समर्थन किया है, वह विशिष्ट है। यही कारण है कि हेमचन्द्र ने अपने प्रमाण-लक्षण में अपूर्व या अनधिगत पद की उद्भावना नहीं की है।

वस्तुतः हेमचन्द्र की प्रमाण-लक्षण की अवधारणा हमें पाश्चात्त्य तर्कशास्त्र के सत्य के संवादिता सिद्धान्त का स्मरण करा देती है। पाश्चात्त्य तर्कशास्त्र में सत्यता-निर्धारण के तीन सिद्धान्त हैं- 1. संवादिता सिद्धान्त, 2. संगति सिद्धान्त और 3. उपयोगितावादी या अर्थक्रियावादी सिद्धान्त। उपर्युक्त तीन सिद्धान्तों में हेमचन्द्र का सिद्धान्त अपने प्रमाण-लक्षण में अविसंवादित्व और अपूर्वता पद का समावेश नहीं होने से तथा प्रमाण को सम्यगर्थनिर्णय के रूप में परिभाषित करने के कारण सत्य के संवादिता सिद्धान्त के निकट है।

-संस्थापक/ निदेशक, प्राच्य विद्यापीठ, दुपाड़ा रोड़, शाजापुर (म.प्र.)

पाठक अभिमत

श्री एस. कृष्णचन्द चोरडिया

'जिनवाणी' (नवम्बर 2013) का 'आचार्यप्रवर श्री हीराचन्द्र दीक्षा अर्द्धशताब्दी विशेषांक' मैंने बहुत ध्यानपूर्वक पढ़ा। आचार्य श्री हीराचन्द्र जी के बारे में अनेक नई बातें मुझे पढ़ने को मिली। इससे मेरी जानकारी ही नहीं बढ़ी, अपितु उनके प्रति श्रद्धा भी बढ़ी है। आचार्यप्रवर के वीरभ्राता श्री प्रेमचन्द जी गाँधी द्वारा लिखित लेख 'आचार्यश्री का सांसारिक परिवार एवं कुछ अमिट स्मृतियाँ' हृदय को छूने वाला है। इसमें बहुत ही सहजता और सच्चाई के साथ आचार्यश्री के सांसारिक परिवार और उनकी प्रव्रज्या से जुड़े संस्मरण अंकित हुए हैं। आप तो प्रधान सम्पादक हैं ही तथा अनेक लेखों के लेखक भी। आपने इस विशेषांक में साधु-साध्वियों, विद्वानों, पदाधिकारियों से लेकर अनेक गुरुभक्त श्रावक-श्राविकाओं की भावनाओं और संस्मरणों को संयोजित किया है, जो विविध आयामों में अभिव्यक्त हुए हैं। जिनवाणी के विशेषांकों की कड़ी में यह विशेषांक भी पठनीय, मननीय और संजोने योग्य है।

-संस्थापक महासचिव : जैनविद्या शोध प्रतिष्ठान, सुगन हाउस, 18, रामानुजा अय्यर स्ट्रीट, साहूकारपेट, चेन्नई-600001 (तमिलनाडु)

शोधालेख

पिण्डस्थ, पदस्थादि ध्यान-चतुष्टय

डॉ. संजीवकुमार गोधा

तीन लोकों में जितने भी जीव हैं, सभी सुख चाहते हैं।[1] सुख आकुलता के अभाव में है। आकुलता का पूर्ण अभाव मोक्ष में होने से मोक्ष अवस्था ही उपादेय है।[2] अतः सुखार्थी जीव की मंजिल मोक्ष है। मोक्ष का मार्ग संवर और निर्जरा है। निर्जरा का मूल कारण तप कहा गया है।[3] तप बारह प्रकार का है- अनशन, ऊनोदरी, वृत्ति परिसंख्यान, रसपरित्याग, विविक्त शय्यासन, कायक्लेश, प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, व्युत्सर्ग और ध्यान।[4] इन सभी तपों का एक यही व्यवस्थित क्रम है, क्योंकि ये सभी उत्तरोत्तर उत्कृष्ट होते गये हैं।

इन बारह प्रकार के तपों में अनशन पहले क्रम पर आता है और ध्यान बारहवें क्रम पर। अनशन से जितनी निर्जरा होती है, उससे असंख्यगुणी निर्जरा ध्यान से होती है। कोई अनेक वर्षों तक भी अनशन करे तो निर्जरापूर्वक मोक्ष की गारण्टी नहीं है, जबकि ध्यान यदि उत्कृष्टरूप से मात्र एक अंतर्मुहूर्त किया जाये तो नियम से मोक्ष होता है। आचार्य उमास्वामी/उमास्वाति के शब्दों में-

उत्तमसंहननस्य एकाग्रचिन्तानिरोधो ध्यानमान्तर्मुहूर्तात्।[5]

इस प्रकार यह निश्चित हुआ कि ध्यानरूपी तप से उत्कृष्ट निर्जरा होती है तथा निर्जरारूपी मार्ग के बिना मोक्ष रूपी मंजिल नहीं मिलती। बिना मोक्ष के पूर्ण सुखी नहीं हुआ जा सकता। जो जीव बिना मोक्ष के पूर्ण सुख मानते हैं, उन्हें बनारसीदासजी ने मूर्ख शिरोमणि कहा है।[6] अतः पूर्ण सुखरूप मोक्ष अवस्था की प्राप्ति हेतु अपनी आत्मा का ध्यान करना चाहिये। कहा भी है-

झायउ णिय अप्पाणं जइ इच्छइ सासयं सोक्खं।[7]

तात्पर्य यह है कि पूर्ण सुख प्राप्त करने का मार्ग ध्यान से ही प्रारम्भ होता है। यही सर्वोत्कृष्ट तप है। तप शब्द सुनते ही ऐसा लगता है कि बहुत कठोर आचरण का नाम तप है, किन्तु ऐसा नहीं है। एक व्यक्ति यदि किसी कोने में चुपचाप हाथ पर हाथ धरकर बैठा है, हम समझते हैं कि वह फालतू बैठा है, कुछ नहीं कर रहा; किन्तु हो सकता है कि वह ध्यान नामक उत्कृष्ट तप कर रहा हो।

ध्यान वस्तुतः चिन्तन की एकाग्रता का नाम है। जिस कार्य में जितनी एकाग्रता होगी,

उसका प्रतिफल उतना ही अधिक मिलेगा। सूर्य की किरणें जब विकेन्द्रित होती हैं, तब उनमें इतनी तीव्रता या तेजी नहीं होती कि कागज के एक टुकड़े को भी जला सके, लेकिन वे ही किरणें केन्द्रित होने पर रूई के बहुत बडे ढ़ेर को जलाने/भस्म करने में समर्थ होती हैं। सौरऊर्जा के जितने भी प्रयोग वर्तमान में देखे जा रहे हैं, वे सब सूर्य की विकेन्द्रित किरणों को केन्द्रित करके उस शक्ति के उपयोग के लिये ही किये जा रहे हैं।

हमारी ज्ञान किरणें भी विकेन्द्रित हैं, उनका केन्द्रित करना ही ध्यान है। ध्यान वस्तुतः ज्ञान की एकाग्रता का ही नाम है। यदि वह एकाग्रता अशुभ विषय में है तो उसे अप्रशस्त ध्यान कहा है तथा यदि वही ज्ञान (उपयोग) की एकाग्रता शुभ विषय में हो तो उसे प्रशस्त ध्यान कहते हैं।[8]

दुनिया में ध्यान से रहित कोई भी व्यक्ति नहीं है। दुकानदार ग्राहक का, डॉक्टर मरीज का, पति पत्नी का निरन्तर ही ध्यान करते हैं। पर यह अशुभ ध्यान है। चित्त का मात्र एक ओर ही एकाग्र हो जाना ध्यान तप नहीं है, वरन् स्व में एकाग्र होना 'ध्यान' तप है। लौकिक वांछा से पर में एकाग्र होना ध्यान तो हो सकता है, पर वह ध्यान तप नहीं हो सकता। कहा भी है- **तद्ध्यानं रौद्रमार्तं वा यदैहिकफलार्थिनाम्।**[9] अर्थात् ऐहिक फल को चाहने वालों के जो ध्यान होता है, वह या तो आर्तध्यान है या रौद्रध्यान। इन दोनों ध्यानों के सम्बन्ध में आचार्य जिनसेन कहते हैं- **हेयमाद्यं द्वयं विद्धि दुर्ध्यानं भववर्धनम्।**[10] अर्थात् ये दोनों ध्यान संसार को बढ़ाने वाले हैं, खोटे ध्यान हैं; अतः छोड़ने योग्य हैं।

जैन परम्परा के सर्वाधिक ख्यातिप्राप्त ग्रंथ तत्त्वार्थसूत्र में ध्यान के आर्त आदि चार[11] भेद बताये गए हैं। तत्त्वार्थसूत्र की सर्वार्थसिद्धि, राजवार्तिक, श्लोकवार्तिक आदि टीकाओं में भी इन चार ध्यानों की विस्तृत चर्चा है। आर्तध्यान, रौद्रध्यान, धर्मध्यान और शुक्लध्यान से सभी प्रबुद्धवर्ग परिचित हैं। यहाँ उनकी चर्चा नहीं है। यहाँ तो इनके अतिरिक्त जो बातें ध्यान के विशिष्ट ग्रन्थों में उपलब्ध होती हैं, उनकी ओर ध्यान आकर्षित करना अभीष्ट है।

आश्रय की अपेक्षा अथवा ध्यान की पद्धति की अपेक्षा से उसे चार भागों में विभाजित किया गया है। योगसार ग्रन्थ में आचार्य योगीन्दुदेव आर्त्त आदि ध्यानों की चर्चा किये बिना ही शुभध्यान के चार भेद बताते हैं। उनका कथन मूलतः इस प्रकार है-

जो पिंडत्थु वुह रूवत्थु वि जिण उत्तु।
रूवातीत मुणेहि लहु जिम परू होहि पवित्तु।।[12]
पिण्डस्थ और पदस्थ अर रूपस्थ रूपातीत जो।
शुभध्यान जिनवर ने कहे जानो कि परम पवित्र वो।।[13]

जिनेन्द्र भगवान ने पिण्डस्थ, पदस्थ, रूपस्थ और रूपातीत को परम पवित्र शुभध्यान कहा है। आचार्य शुभचन्द्र ने प्रथम तो ध्यान के वे ही चार भेद[14] बताये हैं, जो तत्त्वार्थसूत्र में हैं, पश्चात् उन सभी के चार-चार उत्तर भेद किये हैं। उसमें धर्म ध्यान के जो चार भेद[15] आज्ञाविचय, अपाय विचय, विपाक विचय, संस्थान विचय बताये हैं, उसमें अंतिम भेद संस्थान विचय के प्रभेद बताते हुए कहा गया है- **पिण्डस्थं च पदस्थं च रूपस्थं रूपवर्जितम्।**[16] 1. पिण्डस्थ धर्मध्यान, 2. पदस्थ धर्मध्यान, 3. रूपस्थ धर्मध्यान, 4. रूपातीत धर्मध्यान। इसका संक्षिप्त निरूपण इस प्रकार है-

1. पिण्डस्थ- पिण्ड माने शरीर, उसमें स्थित जो हो वह पिण्डस्थ है, इस प्रकार शरीर में स्थित आत्मा का ध्यान करना ही पिण्डस्थ ध्यान है। ब्रह्मदेवसूरि लिखते हैं- **पिण्डस्थं स्वात्मचिन्तनम्।**[17] अर्थात् निजात्मा का चिन्तन ही पिण्डस्थ ध्यान है। आत्मा के अजर, अमर, अविनाशी, ध्रुव, शाश्वत स्वरूप का चिन्तन ही पिण्डस्थ ध्यान है। यथा- 'मैं प्रत्यक्ष, अखण्ड, अनन्त, चिन्मात्र ज्योति आत्मा अनादि अनंत नित्य उदयरूप विज्ञान घन स्वभाव भावत्व के कारण एक हूँ।'[18] इस प्रकार शरीर में रहते हुए भी अपने को शरीर से भिन्न त्रैकालिक आत्मारूप विचारना, चिन्तन करना उसी में उपयोग को रमाना ही पिण्डस्थ धर्मध्यान है। इसकी पाँच धारणाएँ कही गई हैं अर्थात् पिण्डस्थ धर्मध्यान पाँच धारणाओं के आश्रय से होता है-

धारणाः पंच विज्ञेयाः पिण्डस्थे जिनभाषिते।
पार्थिवाग्नेयिकी श्वासी जलीया तत्त्वरूपिणी।।[19]

(1) पार्थिवी/पृथ्वी धारणा
(2) आग्नेयी धारणा
(3) वारुणी/ वायु धारणा
(4) जल धारणा
(5) तत्त्वरूपवती धारणा

पिण्डस्थ ध्यान में चित्त की स्थिरता के लिये पृथ्वी आदि पाँच प्रकार की धारणाओं की कल्पना की गई है। इसमें प्रथम तो मध्यलोक, जम्बूद्वीप आदि की रचना के आधार से अपनी स्थिति के चिंतन रूप पृथ्वी संबंधी धारणा से मन को स्थिर करे, तत्पश्चात् अग्नि की धारणा से कर्म और शरीर को दग्ध करने की कल्पना करके मन को रोके, तत्पश्चात् पवन धारणा की कल्पना करके शरीर तथा कर्म भस्म को उड़ाकर मन को स्थिर करे,

पश्चात् जल की धारणा से उसमें से बची रज को धो देने रूप ध्यान से मन को निश्चल करे और आत्मा को शरीर और कर्म से रहित शुद्ध ज्ञानानन्दमय अनुभव करे।

इन सभी धारणाओं में काल्पनिक रूपक बनाकर निज आत्मा के सन्मुख उपयोग को एकाग्र कराने का प्रयास किया गया है। संक्षेप में कहें तो अपने आत्म-तत्त्व का पिण्डरूप किया गया चिन्तन ही पिण्डस्थ ध्यान है, यथा- आत्मा के (अपने) बारे में ऐसा विचारना कि मैं ज्ञान का घनपिण्ड, शक्तियों का संग्रहालय, गुणों का निधान, आनन्द का रसकन्द हूँ। यही पिण्डस्थ ध्यान है।

2. पदस्थ ध्यान- मंत्र, वाक्य, सूत्र आदि के माध्यम से उपयोग को स्थिर करने का प्रयास पदस्थ ध्यान कहलाता है। पंच परमेष्ठियों के पाँच पदों का चिन्तन करना। ॐ- इस एक अक्षर को आधार बनाकर पंच परमेष्ठियों एवं सम्पूर्ण द्वादशांग तक का चिन्तन तथा उसके पश्चात् पुनः सिमटते हुए अपने आत्मा का चिन्तन ही पदस्थ ध्यान है। ह्रीं के माध्यम से चौबीस तीर्थंकरों का ध्यान, णमोकार मंत्र, चत्तारि मंगल आदि पदों से अथवा आगम के पदों का एकाग्र चित्त होकर ध्यान करना ही पदस्थ ध्यान है। उदाहरणार्थ-

अप्पा सो परमप्पा।[20]

आदा णाण पमाणं णाणं णेयपमाणमुद्दिट्ठं। णेयं लोयालोयं तम्हा णाणं तु सव्वगयं।।[21]

अहमेक्को खलु सुद्धो णिम्ममओ णाण दंसणसमग्गो।[22]

आत्मा ही परमात्मा है। आत्मा ज्ञानप्रमाण है। ज्ञान ज्ञेय प्रमाण होता है। ज्ञेय लोकालोक होता है। अतः ज्ञान सर्वगत है। मैं एक शुद्ध आत्मा हूँ जो ममत्व रहित होकर ज्ञान एवं दर्शन से सम्पन्न है।

3. रूपस्थ ध्यान- अरिहंत परमेष्ठी के स्वरूप का चिन्तन रूपस्थ ध्यान है। उनकी परमौदारिक देह, समवसरण आदि विभूति, भामण्डल आदि अष्ट महाप्रातिहार्य को आधार बनाकर किया गया चिन्तन ही रूपस्थ ध्यान है। उनके नेत्रों की पलकें नहीं झपकतीं, चारों ओर मुख दिखाई देता है, नख व केश नहीं बढ़ते। इस प्रकार अनेक अतिशय युक्त अरिहंतों का चिन्तन किया जाना चाहिये। इस प्रकार अरिहंतों के यथार्थ बाह्य स्वरूप का चिन्तन करने से गृहीत मिथ्यात्व का नाश होता है तथा यदि उनके अंतरंग स्वरूप अनंत चतुष्टय का विचार किया जाये अथवा द्रव्य, गुण, पर्याय से उनका चिन्तन कर अपने स्वरूप से मिलाने करें तो वह अगृहीत मिथ्यात्व को भी नष्ट करने में समर्थ है। आचार्य कुन्दकुन्द के शब्दों में-

जो जाणदि अरहंतं दव्वत्त-गुणत्त-पज्जयत्तेहिं।
सो जाणदि अप्पाणं मोहो खलु जादि तस्स लयं।।[23]

अर्थात् जो अरिहंत को द्रव्यपने, गुणपने, पर्यायपने जानता है, वही अपनी आत्मा को जानता है और जो अपनी आत्मा को जानता है, उसका मोह अवश्य नाश को प्राप्त होता है।

इस प्रकार रूपी परमात्मा के आधार से अरूपी आत्मा तक पहुँचने हेतु किया गया ध्यान ही रूपस्थ ध्यान है।

4. रूपातीत ध्यान– रूपातीत अर्थात् अरूपी। आत्मा अरूपी है तथा परमात्माओं में सिद्ध परमात्मा को अशरीरी होने से अरूपी कहा गया है। वे निष्कर्म परमात्मा हैं, अशरीरी, अमूर्तिक हैं। ऐसे रूपातीत सिद्ध परमात्मा के आधार से किया गया चिन्तन रूपातीत ध्यान है। कैसे होते हैं सिद्ध परमात्मा?

णिक्कमा अट्ठ गुणा किंचूणा चरमदेहदो सिद्धा।
लोयग्गठिदा णिच्चा उप्पाद-वएहिं संजुत्ता।।[24]

सकल कर्म रहित, अंतिम देह से किंचित् न्यून पुरुषाकार, लोक के अग्र भाग में स्थित, उत्पाद-व्यय से संयुक्त सिद्ध परमात्मा का चिन्तन किया जाना चाहिये। अनेक स्थानों पर अपने स्वरूप को सिद्ध समान भी बताया गया है, यथा– **सिद्ध समान सदा पद मेरो।**[25]

वर्णीजी अपने कीर्तन में कहते हैं– **मैं वह हूँ जो हैं भगवान, जो मैं हूँ वह है भगवान।।**[26]

और भी कहा है– **मम स्वरूप है सिद्ध समान।**[27]

इस प्रकार के चिन्तन को देखकर आश्चर्य होता है कि अपने को भगवान, परमात्मा, शुद्ध रूप चिन्तन करना कहाँ तक उचित है? क्या यह ध्यान सम्यक् है?

इसका उत्तर आचार्य कुन्दकुन्द देव के समयसार में मिलता है–

सुद्धं तु वियाणंतो सुद्धं चेवप्पयं लहदि जीवो।
जाणंतो दु असुद्धं असुद्धमेवप्पयं लहदि।।[28]

डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल कृत इसका पद्यानुवाद इस प्रकार है–

जो जानता मैं शुद्ध हूँ वह शुद्धता को प्राप्त हो।
जो जानता अविशुद्ध वह अविशुद्धता को प्राप्त हो।।[29]

वस्तुस्थिति यही है कि शुद्ध स्वरूप का चिन्तन ही शुद्धदशा को प्राप्त कराने में समर्थ है। यही कारण है कि जब-जब ध्यान करने की प्रेरणा दी जाती है तो उत्तम अवस्था, परमात्मा आदि का ही ध्यान करने की बात कही जाती है न कि विकार, राग-द्वेष, कषायों का। क्योंकि हम जैसा सोचते हैं, जैसा विचारते हैं, जैसा चिन्तन करते हैं, धीरे-धीरे वैसे ही बन

जाते हैं। अतः ध्यान का यह सम्पूर्ण प्रकरण सुख स्वरूपी आत्मा की आराधना करते हुए सुखी होने के लिये है। यह उत्तम ध्यान ही संसार परिभ्रमण मिटाकर परम सुख की प्राप्ति कराने वाला है।

ध्यान की महिमा अलौकिक है। आचार्य शिवकोटि ध्यान का माहात्म्य बताते हुए लिखते हैं कि कषायों के साथ युद्ध करते समय (चारित्र मोह के नाश के लिये) ध्यान क्षपक के लिये आयुध व कवच के तुल्य है, वृद्ध पुरुष की लाठी के समान यह रत्नत्रय से च्युत नहीं होने देता है, तथा मल्ल के दुग्ध-घृतादि पीने के समान बल की दृढ़ता करता है। जैसे रत्नों में हीरा प्रधान है, सुगंधित द्रव्यों में गोशीर्ष चन्दन प्रधान है तथा मणियों में वैडूर्यमणि प्रधान है, वैसे ही क्षपक के समस्त व्रत-तप में ध्यान प्रधान है।[30]

आत्मध्यान की प्रेरणा देते हुए कार्तिकेयस्वामी कहते हैं-

इय संसारं जाणिय मोहं सव्वायरेण चइऊण।

तं झायइ स-सरूवं संसरणं जेण णासेइ।।[31]

अर्थात् इस तरह संसार को दुःखरूप जानकर सर्व उद्यम से मोह को छोड़कर आत्मस्वरूप का ध्यान करो, जिससे संसार परिभ्रमण नष्ट हो जाए।

कल्याणमंदिर स्तोत्र में भी कहा है- **ध्यानात् जिनेश भवतो भविनः क्षणेन, देहं विहाय परमात्मदशां व्रजन्ति।**[32]

अर्थात् हे जिनेश (निज परमात्मा)! तुम्हारे ध्यान से क्षणमात्र में देह का अभाव होकर परमात्मदशा की प्राप्ति होती है।

अंत में निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि संसार के सर्व दुःखों का अन्त करने के लिये ध्यान ही सर्वोत्तम उपाय है। अतः हमें ध्यान का सम्यक् स्वरूप समझकर निज आत्म ध्यान की ओर उन्मुख होना चाहिये।

संदर्भः-

1. जे त्रिभुवन में जीव अनंत सुख चाहें...छहढाला-पहली ढाल (पं. दौलतरामजी कृत)
2. आकुलता शिवमाँहि न तातैं शिवमग लाग्यो चहिये....छहढाला-तीसरी ढाल (पं. दौलतरामजी कृत)
3. तपसा निर्जरा च- तत्त्वार्थसूत्र, 9.3
4. अनशनावमौदर्यवृत्तिपरिसंख्यानरसपरित्यागविविक्तशय्यासनकायक्लेशा बाह्यं तपः, प्रायश्चित-विनयवैयावृत्यस्वाध्यायव्युत्सर्गध्यानान्युत्तरं। -तत्त्वार्थ सूत्र, 9.19-20
5. तत्त्वार्थसूत्र 9.27

6. जो बिनु ग्यान क्रिया अवगाहै, जो बिनु क्रिया मोख पद चाहै।
जो बिनु मोख कहै मैं सुखिया, सो अजान मूढनिमैं मुखिया।।
-समयसार नाटक, निर्जरा द्वार, छंद-11, पृष्ठ-136 (कविवर बनारसीदास कृत)
7. तत्त्वसार, गाथा-16 (आचार्य अमृतचन्द्र)
8. ज्ञानार्णव, सर्ग-25, श्लोक-18,19
9. तत्त्वानुशासन, श्लोक-20
10. आदिपुराण, भाग-1, पर्व-21, श्लोक-29
11. आर्त्तरौद्रधर्म्यशुक्लानि -तत्त्वार्थसूत्र, अध्याय-9, सूत्र-28
12. योगसार, गाथा-98 (आचार्य योगेन्दुदेव कृत)
13. योगसार पद्यानुवाद, छन्द-98 (डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल कृत)
14. ज्ञानार्णव, सर्ग-25, श्लोक-20
15. ज्ञानार्णव, सर्ग-33, श्लोक-5
16. ज्ञानार्णव, सर्ग-37, श्लोक-1
17. बृहद्द्रव्य संग्रह, गाथा-48 की टीका
18. समयसार गाथा- 73 की टीका (आचार्य अमृतचन्द्र)
19. उपासकाध्ययन, 295 (ध्यानामृत, पृष्ठ-233 से साभार)
20. परमात्मप्रकाश, अध्याय दूसरा, गाथा- 174 (297)
21. प्रवचनसार गाथा- 23
22. समयसार गाथा-73
23. प्रवचनसार गाथा-80
24. बृहद् द्रव्य संग्रह, गाथा-14
25. समयसार नाटक, मंगलाचरण छन्द नं. 11 (कविवर बनारसीदास कृत)
26. हूँ स्वतंत्र निश्चल निष्काम- सहजानंदजी वर्णी रचित कीर्तन
27. वही
28. समयसार, गाथा-186
29. कुन्दकुन्द शतक, छन्द-9
30. भगवती आराधना, गाथा-1901-1905
31. कार्तिकेय अनुप्रेक्षा, गाथा-73
32. कल्याणमंदिर स्तोत्र, श्लोक-15

-बी-54, जनता कॉलोनी, जयपुर-302004 (राज.)

लेखकों या कवियों के द्वारा अपनी कोई भी रचना प्रकाशनार्थ उन्हीं पत्रिकाओं में भेजी जानी चाहिए, जिनके सम्पादकों की योग्यता पर उन्हें पूरा-पूरा विश्वास हो।

गवेषणा

प्रतिमाधारी द्वारा स्वमूत्रसेवन

संकलन : श्री नवरतन डागा

जैनागम व्यवहारसूत्र में क्षुद्र प्रस्रवण (मोक, मूत्र) प्रतिमा एवं महत् प्रस्रवण (मोक) प्रतिमा का वर्णन प्राप्त होता है। इन प्रतिमाओं में तपस्या के दौरान साधक अपने प्रस्रवण का पान करता है। सम्प्रति शिवाम्बु (स्वमूत्र, प्रस्रवण) के सेवन को चिकित्सा का एक साधन माना जाता है। इसका उपयोग शरीर के बाहर एवं भीतर दोनों स्थानों पर हो सकता है। प्राचीन आगम में इसका उल्लेख मोक (मूत्र) शब्द से हुआ है। मूल पाठ एवं विवेचन यहाँ प्रस्तुत है।

दो पडिमाओ पण्णत्ताओ, तं जहां- 1. खुड्डिया वा मोयपडिमा, 2. महल्लिया वा मोयपडिमा। खुड्डियं णं मोयपडिमं पडिवन्नस्स अणगारस्स कप्पइ पढम-सरय-कालसमयंसि वा चरिम-निदाह-कालसमयंसि वा, बहिया गामस्स वा जाव रायहाणीए वा वणंसि वा वणदुग्गंसि वा पव्वयंसि वा पव्वयदुग्गंसि वा। भोच्चा आरुभइ, चोद्दसमेणं पारेइ, अभोच्चा आरुभइ, सोलसमेण पारेइ। जाए-जाए मोए आगच्छइ, ताए-ताए आईयव्वे। दिया आगच्छइ आईयव्वे, रत्तिं आगच्छइ नो आईयव्वे। सपाणे मत्ते आगच्छइ नो आईयव्वे, अपाणे मत्ते आगच्छइ आईयव्वे। सबीए मत्ते आगच्छइ नो आईयव्वे, अबीए मत्ते आगच्छइ आईयव्वे। ससणिद्धे मत्ते आगच्छइ नो आईयव्वे अससणिद्धे मत्ते आगच्छइ आईयव्वे। ससरक्खे मत्ते आगच्छइ नो आईयव्वे, अससरक्खे मत्ते आगच्छइ आईयव्वे। जावइए-जावइए मोए आगच्छइ, तावइए-तावइए सव्वे आईयव्वे, तं जहा- अप्पे वा, बहुए वा। एवं खलु एसा खुड्डिया मोयपडिमा अहासुत्तं जाव आणाए अणुपालित्ता भवइ।।41।।

महल्लियं णं मोयपडिमं पडिवन्नस्स अणगारस्स कप्पइ पढम-सरय-कालसमयंसि वा, चरम-निदाह-कालसमयंसि वा, बहिया गामस्स वा जाव रायहाणिए वा वणंसि वा वणदुग्गंसि वा पव्वयंसि वा पव्वयदुग्गंसि वा, भोच्चा आरुभइ, सोलसमेणं पारेइ, अभोच्चा आरुभइ, अट्ठारसमेणं पारेइ। जाए-जाए मोए आगच्छइ, ताए-ताए आईयव्वे। दिया आगच्छइ आईयव्वे, रत्तिं आगच्छइ नो आईयव्वे जाव एवं खलु एसा महल्लिया मोयपडिमा अहासुत्तं जाव आणाए अणुपालित्ता भवइ।।42।।

-व्यवहार सूत्र, उद्देशक 9, सूत्र- 41,42

दो प्रतिमाएँ कही गई हैं, यथा- 1. छोटी प्रस्रवणप्रतिमा, 2. बड़ी प्रस्रवणप्रतिमा।

छोटी प्रस्रवणप्रतिमा शरत्काल के प्रारम्भ में अथवा ग्रीष्मकाल के अन्त में ग्राम के बाहर यावत् राजधानी के बाहर वन में या वनदुर्ग में, पर्वत पर या पर्वतदुर्ग में अनगार को धारण करना कल्पता है। यदि वह भोजन करके उस दिन इस प्रतिमा को धारण करता है तो छह उपवास से इसे पूर्ण करता है। यदि भोजन किये बिना अर्थात् उपवास के दिन इस प्रतिमा को धारण करता है तो सात उपवास से इसे पूर्ण करता है। इस प्रतिमा में भिक्षु को जितनी बार मूत्र आवे उतनी बार पी लेना चाहिए। दिन में आवे तो पीना चाहिए, किन्तु रात में आवे तो नहीं पीना चाहिए। कृमियुक्त आवे तो नहीं पीना चाहिए, किन्तु कृमिरहित आवे तो पीना चाहिए। वीर्यसहित आवे तो नहीं पीना चाहिए, किन्तु वीर्यरहित आवे तो पीना चाहिए। चिकनाईसहित आवे तो नहीं पीना चाहिए, किन्तु चिकनाईरहित आवे तो पीना चाहिए। रज (रक्तकण) सहित आवे तो नहीं पीना चाहिए, किन्तु रजरहित आवे तो पीना चाहिए। जितना-जितना मूत्र आवे उतना-उतना सब पी लेना चाहिए, वह अल्प हो या अधिक।।41।। इस प्रकार यह छोटी प्रस्रवण प्रतिमा सूत्रानुसार यावत् जिनाज्ञानुसार पालन की जाती है।

बड़ी प्रस्रवणप्रतिमा शरत्काल के प्रारम्भ में या ग्रीष्मकाल के अन्त में ग्राम के बाहर यावत् राजधानी के बाहर वन में या वनदुर्ग में, पर्वत पर या पर्वतदुर्ग में अनगार को धारण करना कल्पता है। यदि वह भोजन करके उसी दिन इस प्रतिमा को धारण करता है तो सात उपवास से इसे पूर्ण करता है। यदि भोजन किये बिना अर्थात् उपवास के दिन इस प्रतिमा को धारण करता है तो आठ उपवास से इसे पूर्ण करता है। इस प्रतिमा में भिक्षु को जब-जब मूत्र आवे, तब-तब पी लेना चाहिए। यदि दिन में आवे तो पीना चाहिए, किन्तु रात में आवे तो नहीं पीना चाहिए यावत् इस प्रकार यह बड़ी प्रस्रवणप्रतिमा सूत्रानुसार यावत् जिनाज्ञानुसार पालन की जाती है।

विवेचन– इस सूत्रद्विक में दो भिक्षु प्रतिमाओं का वर्णन किया गया है। इन्हें केवल निर्ग्रंथ ही स्वीकार कर सकता है। निर्ग्रन्थियाँ इन प्रतिमाओं को धारण नहीं कर सकतीं। क्योंकि ये प्रतिमाएँ ग्रामादि के बाहर अथवा जंगल या पहाड़ों में जाकर सात-आठ दिन तक एकाकी रहकर रात-दिन कायोत्सर्ग करके पालन की जाती है। अतः भाष्य में इसका अधिकारी तीन संहनन वाले पूर्वधारी को ही बताया है।

ये प्रतिमाएँ आषाढ़ मास या मृगशीर्ष (मिगसर) मास में ही धारण की जाती हैं। दोनों प्रस्रवणप्रतिमाओं में से एक प्रतिमा सात रात्रि कायोत्सर्ग की होती है, उसे छोटी प्रस्रवणप्रतिमा कहा गया है। दूसरी आठ रात्रि कायोत्सर्ग की होती है, उसे बड़ी प्रस्रवणप्रतिमा कहा है।

इन दोनों प्रतिमाओं को प्रथम दिन उपवास तप करके प्रारम्भ किया जा सकता है अथवा एक बार भोजन करके भी प्रारम्भ किया जा सकता है। भोजन तप करने वाले के एक दिन की तपस्या कम होती है, किन्तु कायोत्सर्ग करने का काल तो सभी के समान ही होता है।

इन प्रतिमाओं को धारण करने के बाद चारों प्रकार के आहारों का त्याग कर दिया जाता है, केवल स्वमूत्रपान करना खुला रहता है अर्थात् उन दिनों में जब-जब जितना भी मूत्र आवे, उसे सूत्रोक्त नियमों का पालन करते हुए पी लिया जाता है।

नियम इस प्रकार हैं- 1. दिन में पीना, रात्रि में नहीं, 2. कृमि, वीर्य, रज या चिकनाई युक्त हो तो नहीं पीना चाहिए। शुद्ध हो तो पीना चाहिए।

प्रतिमाधारी भिक्षु के उक्त रक्त, स्निग्धता आदि विकृतियाँ किसी रोग के कारण या तपस्या एवं धूप की गर्मी के कारण ही हो सकती हैं, ऐसा भाष्य में बताया गया है। कभी मूत्रपान से ही शरीर के विकारों की शुद्धि होने के लिए भी ऐसा होता है।

यद्यपि इस प्रतिमा वाला चौविहार तपस्या करता है और रात-दिन व्युत्सर्गतप में रहता है, फिर भी वह मूत्र की बाधा होने पर कायोत्सर्ग का त्याग कर मात्रक में प्रस्रवण त्याग करके उसका प्रतिलेखन करके पी लेता है। फिर पुनः कायोत्सर्ग में स्थिर हो जाता है। यह इस प्रतिमा की विधि है।

इस प्रतिमा का पालन करने वाला मोक्षमार्ग की आराधना करता है। साथ ही उसके शारीरिक रोग दूर हो जाते हैं और कंचनवर्णी बलवान शरीर हो जाता है।

प्रतिमा-आराधन के बाद पुनः उपाश्रय में आ जाता है। भाष्य में उसके पारणे में आहार-पानी की 49 दिन की क्रमिक विधि बताई गई है।

लोक-व्यवहार में मूत्र को एकांत अशुचिमय एवं अपवित्र माना जाता है, किन्तु वैद्यक ग्रन्थों में इसे सर्वौषधि, शिवाम्बु आदि नामों से कहा गया है और जैनागमों में भिक्षु को ''मोयसमायारे'' कहकर गृहस्थों को शुचिसमाचारी वाला कहा गया है।

अभिधान राजेन्द्र कोश में 'निशाकल्प' शब्द में साधु के लिए रात्रि में पानी के स्थान पर इसे आचमन करने में उपयोगी होना बताया है। स्वमूत्र का विधिपूर्वक पान करने पर एवं इसका शरीर की त्वचा पर अभ्यंगन करने पर अनेक असाध्य रोग दूर हो जाते हैं। चर्मरोग के लिए या किसी प्रकार को चोट, खरोंच आदि के लिए यह एक सफल औषध है। अतः आगमों में मूत्र को एकांत अपवित्र या अशुचिमय नहीं मानकर अपेक्षा से पेय एवं अपेक्षा से अशुचिमय भी माना है।

भाष्यकार ने यह भी बताया है कि जनसाधारण शौचवादी होते हैं और मूत्र को एकांत

अपवित्र मानते हैं, अतः प्रतिमाधारी भिक्षु चारों ओर प्रतिलेखन करके कोई भी व्यक्ति न देखे, ऐसे विवेक के साथ मूत्र का पान करे। तदनुसार अन्य भिक्षुओं को भी प्रस्रवण संबंधी कोई भी प्रवृत्ति करनी हो तो जनसाधारण से अदृष्ट एवं अज्ञात रखते हुए करने का विवेक रखना चाहिए।

वर्तमान में भी मूत्रचिकित्सा का महत्त्व बहुत बढ़ा है, इस विषय के स्वतंत्र ग्रन्थ भी प्रकाशित हुए हैं, जिनमें कैंसर, टी.बी. आदि असाध्य रोगों के उपशांत होने के उल्लेख भी है। *-पूर्व महामंत्री, अखिल भारतीय श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ, जोधपुर (राज.)*

प्रभु शान्ति शान्ति दातार

मधुर व्याख्यानी श्री गौतम मुनि जी म.सा.

(तर्जः- मेरा छोटा सा परिवार प्रभु अपना लो इस बार....।)

प्रभु शांति शांति दातार, मेरा वन्दन लो स्वीकार।
मेरे प्राणों के आधार, मुझे अपनालो इस बार।।

जब से मैंने तुमको जाना, तुम्हें पाने को मैं दीवाना।
मेरा स्वप्न करो साकार, मुझे अपनालो इस बार।।

तेरी करुणा पर विश्वास मुझे, अपनाओगे यह आस मुझे।
मेरे हित का करो विचार, मुझे अपनालो इस बार।।

मेरा कोई नहीं है तेरे बिना, अब राग-द्वेष में नहीं जीना।
मैंने देख लिया संसार, मुझे अपनालो इस बार।।

तेरा शरणा सच्चा तीरथ है, उपदेश तुम्हारा अमृत है।
तेरी महिमा का नहीं पार, मुझे अपनालो इस बार।।

तुम जनमे जब मंगल बरसा, फिर से जग शांति को तरसा।
बरताओ मंगलाचार, मुझे अपनालो इस बार।।

बरसादो कृपा ऐसी भगवन, 'गौतम' जैसा हो अपना मिलन।
मेरी सुन लो करुण पुकार, मुझे अपना लो इस बार।।

-संकलनकर्त्ता : पारसमल गिड़िया

तत्त्वज्ञान प्रश्नोत्तरी (क्रमश:87)

आओ मिलकर ज्ञान बढ़ाएँ

श्री धर्मचन्द जैन

(गमा का थोकड़ा)

जिज्ञासा- सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय यदि पहली नारकी के घर में आकर उत्पन्न होता है तब कौन-कौन से गमे बनते हैं?

समाधान- सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय यदि पहली नारकी के घर में आकर उत्पन्न होता है तो नौ गमों में से किसी भी गमे से आकर उत्पन्न हो सकता है। अर्थात् 9 में से कोई भी गमा बन सकता है।

जिज्ञासा- सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय और पहली नारकी इन दो घरों के बीच में जीव के कितने भव हो सकते हैं?

समाधान- सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय और पहली नारकी इन दोनों घरों में जीव के लगातार कम से कम 2 भव तथा अधिक से अधिक 8 भव हो सकते हैं। यदि 2 भव हों तो पहला भव सन्नी तिर्यंच का तथा दूसरा भव पहली नरक का होगा। उसके बाद वह जीव नरक से निकल कर सन्नी तिर्यंच में नहीं आकर सन्नी मनुष्य में आता है।

यदि लगातार 8 भव हों तो सन्नी तिर्यंच, पहली नारकी, सन्नी तिर्यंच, पहली नारकी, इस क्रम से 4 भव सन्नी तिर्यंच के तथा 4 भव पहली नारकी के होते हैं। उसके बाद 9 वाँ भव सन्नी तिर्यंच का न होकर सन्नी मनुष्य का होगा।

जिज्ञासा- औघिक के पहले गमे से आने वाले सन्नी तिर्यंच व पहली नारकी के जीवों की स्थितियाँ कितनी-कितनी हो सकती हैं?

समाधान- औघिक के पहले गमे- औघिक से औघिक में, पहली नारकी के घर में आने वाले सन्नी तिर्यंच की वर्तमान भव में जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त तथा उत्कृष्ट एक करोड़ पूर्व वर्ष की होती है। यहाँ अन्तर्मुहूर्त से तात्पर्य स्वयोग्य सभी पर्याप्तियों से पूर्ण सन्नी तिर्यंच की जघन्य स्थिति से लेना चाहिए अर्थात् वह करण पर्याप्त होना चाहिए।

जघन्य अन्तर्मुहूर्त तथा उत्कृष्ट एक करोड़ पूर्व के सन्नी तिर्यंच के रूप में चार भव हो सकते हैं। बीच-बीच में पहली नारकी के जघन्य 10,000 वर्ष तथा उत्कृष्ट 1 सागरोपम की स्थिति के भी चार भव हो सकते हैं। इस प्रकार कुल मिलाकर सन्नी तिर्यंच के चार भवों की स्थिति जघन्य 4 अन्तर्मुहूर्त तथा उत्कृष्ट 4 करोड़ पूर्व वर्ष की होती है। जबकि पहली नारकी के जीव की चार भवों की जघन्य स्थिति 40,000 वर्ष तथा उत्कृष्ट 4 सागरोपम की होती है।

औघिक गमों में मध्यम स्थितियाँ भी बनती हैं, अतः जघन्य और उत्कृष्ट के बीच बनने वाली सभी स्थितियाँ भी औघिक के गमों में मिल सकती हैं।

जिज्ञासा- औघिक के दूसरे व तीसरे गमे में सन्नी तिर्यंच व पहली नारकी इन दोनों घरों में स्थिति में क्या विशेषता रहती है?

समाधान- औघिक के दूसरे व तीसरे गमे में सन्नी तिर्यंच का जीव जो कि पहली नारकी के घर में जा रहा है, उसमें सन्नी तिर्यंच के वर्तमान भव की स्थिति में तथा चार भवों की स्थिति में कोई अन्तर नहीं रहेगा। अर्थात् औघिक के पहले गमे के समान ही स्थितियाँ बनेंगी, किन्तु दूसरे गमे से पहली नारकी के घर में आने पर उस जीव की स्थिति नारकी के भव में जघन्य 10,000 वर्ष तथा उत्कृष्ट 40,000 वर्ष होगी। क्योंकि दूसरा गमा औघिक से जघन्य का है, इसलिए पहली नारकी के घर में एक भव की 10,000 वर्ष तथा चार भवों की कुल 40,000 वर्ष की स्थिति ही प्राप्त होगी।

औघिक के तीसरे गमे से पहली नारकी के घर में आने पर सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय के जीव की स्थिति एक भव की अपेक्षा 1 सागरोपम की तथा चार भवों की अपेक्षा 4 सागरोपम की होगी। तीसरा गमा औघिक से उत्कृष्ट का होने के कारण पहली नारकी में वह जीव चारों भवों में उत्कृष्ट स्थिति ही प्राप्त करेगा। इस तीसरे गमे से आने वाला जीव जघन्य व मध्यम स्थितियाँ प्राप्त नहीं कर सकता है।

जिज्ञासा- जघन्य के तीन गमों से सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय व पहली नारकी के घरों में जीवों की कौन-कौनसी स्थितियाँ बनती हैं?

समाधान- जघन्य के तीन गमों में से पहला गमा अर्थात् जघन्य से औघिक में

आने वाले जीवों में सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय के रूप में तो चारों भवों में जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त ही रहेगी अर्थात् एक भव की अपेक्षा एक अन्तर्मुहूर्त तथा चार भवों की अपेक्षा 4 अन्तर्मुहूर्त की रहेगी।

जघन्य स्थिति वाला सन्नी तिर्यंच जब पहली नारकी में जघन्य के पहले गमे से आकर उत्पन्न होगा तो नारकी में उसकी स्थिति एक भव की अपेक्षा जघन्य 10,000 वर्ष से लेकर उत्कृष्ट 1 सागरोपम तक की तथा चार भवों की अपेक्षा जघन्य 40,000 वर्ष से लेकर उत्कृष्ट 4 सागरोपम तक की प्राप्त हो सकती है।

इनमें जघन्य उत्कृष्ट के बीच की स्थितियाँ निकालते समय इतना अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि पहली नारकी में 90,000 वर्ष से लेकर 10 लाख वर्ष तक के बीच की स्थिति वाला कोई भी नैरयिक नहीं मिलता है।

जिज्ञासा– जघन्य के दूसरे-तीसरे गमे से सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय के पहली नारकी के घर में आने पर स्थितियों में क्या विशेषता रहती है?

समाधान– जघन्य के दूसरे-तीसरे गमे से सन्नी तिर्यंच के भव में तो कोई परिवर्तन नहीं होगा अर्थात् एक भव की अन्तर्मुहूर्त तथा चार भवों की 4 अन्तर्मुहूर्त की स्थिति रहेगी, किन्तु जब यही जीव पहली नारकी के घर में आकर उत्पन्न होगा तो दूसरे गमे से उसकी स्थिति एक भव की अपेक्षा 10,000 वर्ष तथा चार भवों की अपेक्षा 40,000 वर्ष की होगी।

जब सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय जघन्य के तीसरे गमे से पहली नारकी के घर में आकर उत्पन्न होगा तो उस जीव की स्थिति एक भव की अपेक्षा 1 सागरोपम की तथा चार भवों की अपेक्षा 4 सागरोपम की होगी। जघन्य के दूसरे-तीसरे गमे में भी मध्यम स्थितियाँ नहीं बनती हैं।

जिज्ञासा– उत्कृष्ट के तीन गमों से जब सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय पहली नारकी के घर में आकर उत्पन्न होता है तब कौन-कौनसी स्थितियाँ बनती हैं?

समाधान– उत्कृष्ट के तीन गमों से जब सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय पहली नारकी के घर में आकर उत्पन्न होने वाला हो तो उसके एक भव की स्थिति एक करोड़ पूर्व वर्ष की तथा 4 भवों की अपेक्षा 4 करोड़ पूर्व वर्ष की होती

है।

यही सन्नी तिर्यंच जब पहली नारकी के घर में उत्कृष्ट के पहले गमे से आता है तब नारकी के रूप में उसकी एक भव की स्थिति 10,000 वर्ष से लेकर 1 सागरोपम तक की तथा चार भवों की स्थिति 40,000 वर्ष से लेकर 4 सागरोपम तक की हो सकती है।

जब सन्नी तिर्यंच उत्कृष्ट के दूसरे व तीसरे गमे से पहली नारकी के घर में आकर उत्पन्न होता है तब दूसरे गमे से 10,000 वर्ष से लेकर 40,000 वर्ष तक की स्थिति प्राप्त करता है। अर्थात् एक भव की अपेक्षा 10,000 वर्ष की तथा 4 भवों की अपेक्षा 40,000 वर्ष की स्थिति होती है।

उत्कृष्ट के तीसरे गमे से पहली नारकी के घर में आने पर उस जीव की स्थिति 1 सागरोपम से लेकर 4 सागरोपम तक की होती है। अर्थात् एक भव की अपेक्षा 1 सागरोपम की तथा चार भवों की अपेक्षा 4 सागरोपम की स्थिति समझनी चाहिए। उत्कृष्ट के दूसरे-तीसरे गमे में पहली नारकी के घर में जीवों को मध्यम स्थितियाँ प्राप्त नहीं हो पाती हैं।

(क्रमशः)

-रजिस्ट्रार, अ.भा.श्री जैन रत्न आध्यात्मिक शिक्षण बोर्ड, जोधपुर (राज.)

निज का दृढ़ संकल्प चाहिए

श्री मनोज कुमार जैन 'निर्लिप्त'

जैन धर्म तो क्षात्र-धर्म है, क्षत्रियता-आधार चाहिए।
कर्मों से मुक्ति पाने को, कर्मों का संहार चाहिए।।

घृणा पाप से ही करनी है, पापी से तो कभी नहीं।
पापों से पापी की मुक्ति, का उत्तम प्रयास चाहिए।।

अरिहन्तों से शिक्षा लें हम, कर्म-अरि या शत्रु नाशें।
'निर्लिप्त' हम भी भव-सागर-दुःख, नाशें दृढ़ संकल्प चाहिए।।

-पी.डब्ल्यू.डी.क्वार्टर नं. 52, समद रोड, अलीगढ़-202001 (उत्तर प्रदेश)

विचार

जैन जीवन-शैली

डॉ. श्वेता जैन

- जैन जीवन–शैली जीने की सुन्दर कला है।
- यह जीवन को परम लक्ष्य तक पहुँचाने वाली शैली है।
- जैन जीवन–शैली जीवन को शुद्ध बनाने की शैली है।
- यह पुरुष को महापुरुष बनाने वाली शैली है।
- यह नारी को श्रेष्ठ नारी बनाने की शैली है।
- यह बालकों को सुसंस्कारी बनाने वाली शैली है।
- यह आधुनिकता में समायोजन सिखाने वाली शैली है।
- यह निभने ओर निभाने में निपुण बनाने वाली शैली है।
- यह जीवन को तनावमुक्त करने वाली शैली है।
- यह व्यक्तित्व को निखारने और सुन्दर बनाने की शैली है।
- यह मानव को महामानव बनाने वाली शैली है।
- यह सुख–दुःख में व्यक्ति को समतामय करने वाली शैली है।
- यह मलिन चित्त को शुद्ध बनाने वाली शैली है।
- यह परस्पर उपकार करते हुए जीने की शैली है।
- चकाचौंध के इस युग में सादगीपूर्ण जीवन जीने की शैली है।
- यह समाज को उन्नति के शिखर पर ले जाने वाली शैली है।
- यह आडम्बरों से मुक्त होकर पवित्र जीवन जीने की शैली है।
- यह शुद्ध आजीविका द्वारा अपने जीवन–पोषण की शैली है।
- यह नैतिक उत्कर्ष को स्थापित करने वाली शैली है।
- विचार–सहिष्णु बनकर समन्वय के साथ जीने की शैली है।
- मन के कलिमल को दूर कर प्रेमपूर्ण व्यवहार करने की शैली है।
- तन–मन को स्वस्थ और सबल बनाने वाली शैली है।
- इच्छाओं को न्यून करने की यह अद्‌भुत शैली है।

-'समता कुंज', प्लॉट नं. 12/7ए, जालमविलास स्कीम,
पावटा बी रोड, जोधपुर-342006 (राज.)

English-Section

The Unique and the Universal Dimensions of Jainism (2)

Dr Priyadarshana Jain

(Contd From Last issue)

9. The Sacred Mantra:

The *Namaskāra Mantra* is the *mantra* of all *mantras* and is also called as the *Namaskāra* Mahāmantra. Through this *mantra* salutations are offered to the great spiritual personalities of *Arihantas* and *Siddhas* who have become liberated and worthy of worship and to *Ācāryas*, *Upādhyāyas* and *Sādhus* who are the renunciates committed to the pathway of liberation[8]. This *mantra* provides the key to control one's mundane instincts and desires and enables one to overcome a life of sin and experience spiritual well-being. The *mantra* is secular in nature as one does not find the name of any person and is beyond all isms. The Jains chant this *mantra* individually or in groups on all occasions of joy and sorrow as well as during contemplation, meditation and worship. It is widely regarded as a divine protector and healer.

10. Importance of Fasting:

The Jains are famous for their fasting habits. The ardent Jains fast from sunset to sunrise all their life. Periodical fasting and going without food for a couple of days is a common practice in the Jain community. Fasting is undertaken to overcome the craving for food and to tread on the path of renouncing attachment for all that is mundane and material. The Jains are also careful and particular about the kind of food they take for food is directly related with life and the values that govern one's faith. A simple, *satvik*, vegetarian diet is permissible. Faith in *ahimsa* prohibits the Jains to take up meat, fish, egg, underground roots and stems, etc. Now-a-days Jain food is available in flights, hotels and restaurants and this has become a sign

of Jain identity.

11. Jaina Festivals:

Jain festivals are primarily spiritual in nature rather than being merely ritualistic. Jaina festivals are of two kinds viz., *nitya* (perpetual or general) and *naimittika* (causal or commemorative). The general festivals are those that are celebrated always since time immemorial. All the days of such festivals be it the eight-day long festival of spiritual cleansing, expiation, forgiveness (*paryuśana parva*) or the ten days long festival of spiritual absorption (*dasa lakṣaṇa parva*), are dedicated to nurturing spirituality through penance, meditation, self-introspection, worship, study of holy scriptures and strict observance of all religious principles governing one's conduct. The *paryuśana parva* and the *daśa lakṣaṇa parva* celebrated for eight and ten days respectively are a retreat to one's inner self[9]. These fall in the month of August-September.

Some Jain festivals are celebrated in memory of great men or important incidents. Such commemorative festivals are those related to the auspicious events in the lives of *Tīrthaṅkaras* or in memory of some specific incident. Such festivals include Mahavira Jayanti, Akṣaya Tritīyā, Śruta Pañcami, Rakṣā Bandhana, Deepavali, etc. Deepavali for the Jains marks the Vira-Nirvāṇa day and is celebrated with great spiritual fervor. The Uttarādhyayana Sūtra or the last sermon of Lord Mahavira is read by the devout Jains in all parts of the world. Akṣaya Tritīyā, marks first alms giving to a mendicant Lord Ṛṣabha, Mahāvīra Jayantī, marks the birth of Lord Mahavira.

Thus Jain festivals are a time for spiritual upliftment and soul purification providing ample opportunity to move towards mental peace, tranquility and equanimity, far removed from the hustle and bustle of material living. During these days one looks within and tries to correct wrong perceptions and conduct and exerts to evolve spiritually.

12. Jaina Metaphysics:

Jainism elucidates the nine fundamentals or the reals (*tattvas*) which summarizes the concepts of soul, *karma*, rebirth, bondage and

liberation. A proper understanding of these nine *tattvas* is a pre-requisite for spiritual progress. The nine reals are:

1. **Jīva** – Living thing, Consciousness, (conscious energy) Soul, Self, Spirit, Atman.
2. **Ajīva**– Non-living substances, (unconscious energy) which include matter, space, time, physical body, karmic particles etc.
3. **Puṇya** – Meritorious *karma* or virtue
4. **Pāpa** – Demeritorious *karma* or sin
5. **Āsrava**– Process of association of soul and non-living karma/influx of karma.
6. **Samvara** – Process of stoppage of association of soul and karma
7. **Nirjarā** – Process of partial annihilation of karma
8. **Bandha** – Bondage of soul and karma
9. **Mokṣa** – Liberation of soul/self from all foreign matter, be it the passions (*bhāva karma*), subtle karmic matter (*dravya karma*) and gross physical body (*nokarma*)[10]

All Indian religions and philosophies accept the concept of *karma* and rebirth in some way or the other. But the elucidation of the theory of *karma* and the inner psychic dispositions which cause bondage and liberation are extensively dealt with in the Jain scriptures and this is unique about this philosophy and it guides the four million Jains worldwide to do good and to minimize violence in every walk of life to the extent possible. All Jain practices are guided by the belief in this universal law of cause and effect, which is revealed through the above nine *tattvas*. The moment a soul realizes that it is a pure soul like the *Siddhas* but is trapped by its own ignorance; it awakens its inherent potential and liberates itself, until then it remains in a bondaged state and wanders incessantly in the cycle of transmigration. Hence, Lord Mahavira said, 'Fight with your own self, why fight with external foes? One who conquers oneself by oneself, experiences eternal bliss and happiness.'[11] Thus Jainism emerges as a religion of self-help and self-awakening above everything else.

13. The Philosophy of Lord Mahavira - The three A's:

Lord Mahavira lived 2500 years ago and attained nirvāṇa in 527 B.C. He is the last of the 24 great teachers of this era. The three A's viz., *Ahimsā*-nonviolence, *Anekāntavāda* - multi dimensional approach to reality and *Aparigraha* - non-possession/non-attachment which sum up his teachings and philosophy, are not for any particular community or sect, but for the entire mankind and also relevant for the well being of the planet. These principles aim at awakening the god in man by enabling him to tap the inherent divinity. The foundations of peaceful co-existence and spiritual well being are more relevant than ever before. 'Mahatma Gandhi, who drew abiding inspiration from Jain religion, described Mahavira as an incarnation of non-violence, who spread the message of non-violence as no other person ever did'.

14. Jaina view of environment and declaration of nature:

Jainism recognizes the sanctity of all life forms and reveals that all are mutually interdependent for their survival. It is not the survival of the fittest. Everybody's welfare is of utmost importance. Jaina views that there is life in earth, water, fire, air and plants and man should use the available natural resources discreetly to save him-self of sin and extinction. Mahavira said all living beings desire to life, none wants to die so a nirgrantha or a monk in thought, word and deed does not kill, does not ask others to kill and does not approve of those who kill[12]. The householders too conduct their duties with utmost care and do not take to trades like cutting of forests, dealing in leather, wax, animals, vehicles etc. A Jaina always keeps away from debaucheries like hunting, taking to intoxicating drinks and drugs, stealing, meat-eating, gambling etc., thus protecting the environment. Environmental scientists tell us today to save the forests, conserve fuel, electricity, water, oil etc., but Jainism had advocated these duties 2600 years ago. The Jains have been fore-runners in protecting the right of animals as well as the environment.

Universal Dimensions of Jainism

The above discussion throws light on the uniqueness of

Jainism and also highlights the universal dimensions of Jainism. As suffering and bondage are universal, the pathway for liberation too is a universal one and it comprises of right-vision, right-knowledge and right-conduct. As living beings are stooped in ignorance and delusion, they seek freedom through pseudo beliefs and practices. There are two dimensions of any individual viz., spiritual and material. The spiritual dimension is characterized by consciousness, existence and bliss and the material dimension is characterized by name and form (physical body). Religion which is derived from the root verb 'religare' means to connect or to bind. Supreme religion is that which enables you to connect with your inner core, godliness, purity, truth and other supreme virtues, to look upon others as our own innerself, to be compassionate, tolerant and forgiving in our behavior, to minimize the never ending desires and greed and to be contented within realizing that true happiness is not in seeking the material pleasures and pursuits but in the realization that the soul/self which is godlike is the fountain of joy and eternal bliss. To be absorbed in the self is supreme *Ahimsa*, to understand the soul rightly is *Anekantavada* and to practise supreme detachment is *Aparigraha*.

The Jain faith and the exhaustive philosophical theories are revealed in order to enable the self to realize the self, purify the self and liberate the self. As the self is one, undivided whole of infinite characteristics, a multi-dimensional approach alone can enable one to know it as it is and experience it as it is. Until the task is accomplished and this inner connectivity does not materialize, one cannot be said to be truly religious. One may take to the religious practices but still be unable to promote a culture of interreligious harmony as the inner connectivity has not taken place. Once the inner connectivity is rightfully established the external connectivity with all other beings-micro and macro takes place and this results in laying the foundation for a fearless, secure and peaceful society.

Conclusion

The universal dimension of Jainism is its spirituality which is

revealed through its metaphysics, epistemology, logic and above all its ethics. The great principle of *Ahimsā* which is central to Jaina ethics has spiritual, ethical, social and environmental significance. It may be observed that one weapon may be superior to the other but the weapon of non-violence is supreme. Rational outlook (*Anekānta*), love for wisdom (*darśana*), self-realization through god-realization, ethical way of living, self-restraint, conservation in the place of exploitation (*Aparigraha*) are some of the universally applicable concepts and all these and much more find their place in Jaina philosophy and religion which makes Jainism unique and universal at the same time.

References:

8. Āvaśyaka Sūtra, Edited by Madhukar Muni
9. Portrait of Jain Religion by Dr. N. P. Jain
10. Uttaradhyayana Sūtra and Samayasāra
11. Saman Suttam compiled by Sri Jinendra Varni
12. Ibid

-Asst. Prof. & Head, Dept. of Jainology,
University of Madras, Chennai-5

सम्यग्दर्शन की महिमा

सौ. कमला सिंघवी

अध्यात्म साधना की आधारशिला सम्यग्दर्शन है। सम्यक्त्व ज्ञान-आराधना का स्वर्णिम सोपान है। सम्यग्दर्शन अनुपम सुख का भण्डार है। यह संसार-सागर से पार उतारने के लिए एक महान् यानपात्र (जहाज) है।

मिथ्या दृष्टि, वर्षों तक साधना करके भी उतने कर्मों को नष्ट नहीं कर पाता, जितने कर्म सम्यग्दृष्टि जीव कुछ क्षणों की साधना से नष्ट कर लेता है। आध्यात्मिक साधना के उच्च भव्य भवन में प्रवेश करने के लिए 'सम्यग्दर्शन' द्वार के सदृश है। ऐसी अद्भुत, अनुपम व अद्वितीय महिमा है सम्यग्दर्शन की। सम्यग्दर्शन वह पारसमणि है जिसके स्पर्श मात्र से मिथ्यात्व व अज्ञान रूपी लोहा सम्यक्त्व व ज्ञान रूपी स्वर्ण में बदल जाता है।

-अध्यापिका, जैन पाठशाला ज्ञान मन्दिर, भड़गाँव (महा.)

युवा-स्तम्भ

जैन जीवन-शैली और तनाव प्रबन्धन*

डॉ. तृप्ति जैन

वर्तमान वैश्विक जीवन और तनाव

विश्व की प्रमुख समस्याओं में एक समस्या मानव समाज की तनावग्रस्तता है। आज विश्व में न केवल अभावग्रस्त देश ही तनाव से पीड़ित है, अपितु जो विकसित देश हैं, वे भी उनसे अधिक तनावग्रस्त हैं। वर्तमान युग को हम वैज्ञानिक युग कहते हैं, किन्तु सत्य तो यह है कि यह युग वैज्ञानिक युग कम और तनाव युग ज्यादा है। इसका कारण क्या है? कारणों का विश्लेषण किया जाए तो मूल में भौतिक जीवन शैली इसका मुख्य कारण प्रतीत होती है। आज व्यक्ति मात्र भौतिक संसाधनों की दौड में उलझ कर रह गया है। भौतिक संसाधनों के अभाव में स्वयं को तनावग्रस्त अनुभव करता है। उसका मानना है कि देश जितना विकसित होगा, सुख सुविधा के साधन जितने अधिक होंगे तनाव उतना कम होगा। भौतिकता की इस चकाचौंध में ऐसा प्रतीत होता है कि व्यक्ति अपने जीवन में सुख व शान्ति का साधन बाह्य पदार्थों को ही मानता है। अगर आन्तरिक शान्ति बाह्य पदार्थों से मिलती, सुख व आनन्द भौतिक संसाधनों से मिलता तो आज विकसित देश के व्यक्तियों का जीवन तनावमुक्त होता। आज विश्व में संयुक्त राज्य अमेरिका को सबसे अधिक विकसित देश माना जाता है, किन्तु वहाँ की जनता में भी तनावग्रस्त लोगों का प्रतिशत सबसे अधिक है। नींद की व मस्तिष्क को शिथिल करने की गोलियों की सबसे अधिक खपत वहीं पर है। इससे यह तो प्रमाणित हो जाता है कि भौतिक सुख-सुविधाओं के संसाधन व्यक्तियों को तनावमुक्त जीवन प्रदान नहीं कर सकते। यदि भौतिक सुख-सुविधाएं और उनके साधनों की उपलब्धि ही तनावमुक्ति का मूलभूत आधार होता तो प्रत्येक व्यक्ति का जीवन आनन्दमय (शान्तिमय) होता। पर ऐसा नहीं है, क्योंकि जब भौतिक सुख सुविधा का अभाव तनाव उत्पन्न करता है तो दूसरी ओर संसाधनों की बहुलता भी तनाव उत्पन्न करती है।

अगर भौतिक सुख-सुविधा के संसाधन व्यक्ति के जीवन को तनावमुक्त रख सकते तो आज सभी धनवान सुखपूर्वक अपना जीवन व्यतीत कर रहे होते। प्रत्यक्ष को

* आचार्यप्रवर श्री हीराचन्द्रजी म. सा. के सान्निध्य में 6-7 अक्टूबर 2012 को जयपुर में आयोजित 'जैन जीवन-शैली' विषयक राष्ट्रीय विद्वत्संगोष्ठी में प्रस्तुत आलेख।

प्रमाण की जरूरत नहीं होती। देश-विदेश के वे सभी व्यक्ति अधिक तनावग्रस्त हैं जो आर्थिक स्थिति से सम्पन्न हैं। निर्धन व्यक्ति भी तनावग्रस्त है, पर विकसित व आर्थिक सम्पन्नता वाले व्यक्ति उनसे कहीं अधिक तनावग्रस्त हैं। दोनों के स्तरों में अंतर हो सकता है, किन्तु दोनों के तनावयुक्त होने का कारण एक ही है। मेरी दृष्टि में तनाव का कारण भौतिक की अपेक्षा मानसिक अधिक है।

प्रश्न है आखिर तनाव उत्पत्ति का मूल कारण क्या है ? इस प्रश्न का उत्तर हमें जैन शास्त्रों में मिलता है। वस्तुत: जैन ग्रन्थों में तनाव शब्द कहीं नही मिलता है, किन्तु इसके पर्यायवाची - आतुरता, चिंता, आवेग, विलाप, दु:ख, भय, ईर्ष्या आदि अनेक शब्द मिलते हैं। इन आतुरता आदि शब्दों को हमने पर्यायवाची शब्द इसलिए कहा है, क्योंकि ये तनाव के लक्षण हैं। तनाव की जो अभिव्यक्ति होती है वह दु:ख, विलाप, चिंता, भय, आवेग आदि के रूप में ही होती है। जिन कारणों से दु:ख उत्पन्न होता है, जैन धर्म के अनुसार वे ही तनाव के मूलभूत हेतु हैं।

तनाव का स्वरूप

तनाव के कारणों को जानने से पूर्व तनाव के स्वरूप को समझना आवश्यक है। विभिन्न विद्वानों ने तनाव की विभिन्न परिभाषाएँ दी हैं। जहां रिचर्ड[1] एसए रिबिक्का[2], क्रिस्टी[3] आदि ने बाह्य चाह की अपूर्णता से शारीरिक संरचना में होने वाले परिवर्तन को तनाव कहा है वहीं कुछ मनोवैज्ञानिकों ने इसे एक ऐसी मानसिक संवेदना कहा है जो हमारे दैहिक तंत्र को प्रभावित करती है। उनका मानना है कि भावनात्मक क्रियाओं का असर व्यक्ति के मस्तिष्क पर पड़ता है और उसी से ही कई बीमारियां शरीर में जन्म लेती हैं। मनोविज्ञान वह विज्ञान है, जो प्राणी के व्यवहारों तथा मानसिक प्रक्रियाओं का अध्ययन करता है तथा प्राणी के भीतर के मानसिक द्वन्द्व एवं दैहिक प्रक्रियाओं तथा परिवेश के साथ उनके सम्बन्धों का अध्ययन करता है। इन दैहिक व मानसिक प्रक्रियाओं के विचलन को ही तनाव कहा जाता है, परन्तु जब तनाव के कारणों का विश्लेषण करते हैं तो यह पाते हैं कि तनाव का जन्म हमारी मनोदशा या मनोवृत्ति से ही होता है। तनाव की दशा में हमारी चित्तवृति अशान्त होती है और चित्त की यह संवेगात्मक विसंगति ही तनाव कही जा सकती है। तनाव की जन्मस्थली मन है और मन की चंचलता ही तनाव उत्पन्न करती है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से चित्त या मन का अशान्त होना ही तनाव है। दैहिक दृष्टि से जो हमारी दैहिक क्रियाओं का संतुलन भंग कर देता है वह तनाव है। अध्यात्मिक दृष्टि से आत्मा या चित्तवृति के समत्व या शान्ति को जो भंग करता है वह तनाव है। वस्तुत: जो व्यक्ति की चेतना को चाह या चिन्ता से ग्रस्त बना देता है वह तनाव कहलाता है। हम यह भी कह

सकते हैं कि आत्मा का स्वभाव से विभाव दशा में जाना ही तनाव है। जैन दर्शन के अनुसार तनावमुक्ति का सम्बन्ध आत्मा से है और तनाव का सम्बन्ध शरीर व मन से है। जब तक देहासक्ति है तनाव बना रहेगा, मन में रागद्वेषादि कषाय भाव जन्म लेते रहेंगे और जब व्यक्ति देह से ऊपर उठ कर देहातीत बन जाता है तो वह अध्यात्म की ओर अग्रसर हो जाता है और अपनी जीवन शैली में संयम, अहिंसा, अपरिग्रह आदि जैन दर्शन के मुख्य सिद्धान्तों को जीवन में अपना कर अपने आपको तनावमुक्त कर लेता है।

जीवन की प्रमुख समस्याएँ (तनाव के कारण)

व्यक्ति की समस्याएं ही विश्व की समस्याएं बन चुकी हैं और विश्व की समस्याएं ही व्यक्ति के जीवन में तनाव उत्पन्न कर रही हैं। जहां एक तरफ व्यक्ति देहासक्त हो कर भौतिक सुख-सुविधा के साधन जुटा रहा है, वहीं साधन जुटाने की प्रक्रिया भी उसके जीवन में तनाव उत्पन्न कर रही है। यही कारण है कि विश्व में समस्या बढ़ती जा रही है। इच्छाओं, आकांक्षाओं के पूर्ण हाने पर अथवा अपूर्ण होने पर जो चित वृति बनती है वही उसकी जीवन शैली का निर्माण करती है। इसी आधार पर जीवन सुखी अथवा दु:खी बनता जा रहा है। तनाव की समस्या से निजात पाने के जिन संसाधनों का व्यक्ति सहारा ले रहा है उससे उसकी समस्याएं कम होने की बजाए और अधिक जटिल होती जा रही हैं। इससे एक और प्रमुख समस्या का जन्म हो रहा है-वह है मानवजाति के अस्तित्व का। वैज्ञानिक युग की उभरती नई तकनीकें और आणविक शस्त्र ने यह प्रश्न खड़ा कर दिया है कि विश्व खुद को कैसे सुरक्षित रखे। इंसान का इंसान पर भरोसा नहीं रहा। वह स्वयं की सुरक्षा के लिए शस्त्रों पर भरोसा करता है। स्वयं की व धन की सुरक्षा के लिए मनुष्य चौकीदार से अधिक कुत्तों पर भरोसा करता है। एक दूसरे के प्रति विश्वास, सहयोग, प्रेम की भावना खत्म हो गई है। जहां एक दूजे के प्रति सहयोग आदि की भावना समाप्त हो जाती है वहां द्वन्द्व अपना स्थान बना लेता है। यह द्वन्द्व व्यक्ति के स्तर पर तनाव उत्पन्न करता है और वैश्विक स्तर पर हिंसा का रूप ले लेता है। व्यक्ति के व्यवहार में अविश्वास, नकारात्मक सोच, क्रोध, चिड़चिड़ाहट, भय आदि प्रवृत्तियां अपना स्थान बना लेती हैं और विश्व में हिंसा और युद्ध के कारण व्यक्ति में जो भय उत्पन्न होता है उसमें तनाव की शृंखला अधिक मजबूत होती जाती है। इसीलिए भय को तनाव का समानार्थी भी कहा गया है। कुछेक कारण ऐसे हैं जो व्यक्तिगत स्तर पर ही लागू होते हैं, जैसे :-

1. व्यक्ति के मन में असंतोष की भावना।
2. असंतोष से उत्पन्न संग्रह करने की वृत्ति।
3. राज्याधिकार पाने की लालसा।

4. मान-प्रतिष्ठा पाने व बनाए रखने के लिए असम्यक् प्रयत्न ।
5. स्वार्थ या अपना हित साधने हेतु दूसरों को हानि पहुँचाने की वृत्ति ।
6. पारस्परिक विरोध ।
7. एकान्तवादी दृष्टिकोण ।
8. विभिन्न जाति सम्प्रदायों के भेदभाव के कारण प्रेम, सद्भावना, करुणा, विवेक, आपसी समझ आदि मानवीय गुणों का समाप्त हो जाना।
9. सामाजिक विषमताएँ।
10. परीक्षा में असफल हो जाने का भय ।
11. किसी अपने की मृत्यु हो जाना ।
12. प्रिय वस्तु का खो जाना ।
13. किसी से धोखा मिलने का भय ।
14. पारिवारिक असंतुलन ।
15. आर्थिक विपन्नता ।
16. अतीत व भविष्य की कल्पनाएँ ।
17. किसी अनचाही घटना का घटित हो जाना ।
18. शोषण की प्रवृत्ति ।
19. इन्द्रियों की अतृप्त मांगे ।

जैन दर्शन में तनावों के कारण

जैन दर्शन में उपर्युक्त सभी कारणों का विस्तार से विवेचन मिलता है। जैन दर्शन के अनुसार राग-द्वेष तनाव के मूलभूत कारण हैं। इनमें भी राग की प्रधानता है। जैन दर्शन के अनुसार जो जन्म-मरण के कारण हैं, वे ही तनाव उत्पत्ति के कारण हैं। उत्तराध्ययन सूत्र में तनाव का कारण बताते हुए कहा गया है कि काम-भोग न किसी को बन्धन में डालते हैं और न किसी में विकार ही पैदा कर सकते हैं, किन्तु जो विषयों में राग-द्वेष करता है वही तनावग्रस्त होता है।[4] आचारांग में कहा गया है - राग-द्वेष से युक्त प्रमादी जीव छल कपट करता हुआ पुनः गर्भ में आता है।[5] तनाव की अर्थात् दुःख की प्रक्रिया बताते हुए कहा गया है कि जहाँ राग-द्वेष हैं वहां कर्म है, जहां कर्म हैं, वहां बंधन है और बंधन स्वयं दुःख है।[6] तनाव एक प्रकार का दुःख है। जैन धर्म के अनुसार दुःख का कारण अविद्या, मोह, कामना आसक्ति, रागद्वेष आदि हैं।[7]

इन्द्रिय एवं मन का विषयों से सम्पर्क होने पर अनुकूल के प्रति राग व प्रतिकूल के

प्रति द्वेष होता है। इसलिए आवश्यकता है इन्द्रिय व मन को संयमित करने की। उत्तराध्ययन सूत्र के 32वें अध्याय की अनेक गाथाएँ इस बात का प्रमाण है कि इन्द्रिय एवं मन के विषयों के प्रति आतुर व्यक्ति अतृप्त, चिन्ताग्रस्त व दुःखी ही रहते हैं। जैन आचार्यों ने मन और इन्द्रियों के अनुकूल विषयों की पुनः प्राप्ति व प्रतिकूल परिस्थिति के निराकरण की प्रवृति को ही इच्छा कहा है।[8] इच्छाएं आकाश के समान अनन्त हैं।[9] व्यक्ति तृष्णारूपी चलनी को जल से भरना चाहता है। उसकी पूर्ति के लिए स्वयं व्याकुल (तनावग्रस्त) मनुष्य दूसरों को भी परिताप देता है।[10] उत्तराध्ययन में स्पष्ट रूप से कहा है कि सभी कामभोग अन्ततः दुःख देने वाले होते हैं। देवताओं सहित समग्र संसार में जो भी दुःख हैं, मानसिक, वाचिक एवं कायिक, वे सब कामासक्ति के कारण हैं।[11] अंगुत्तरनिकाय में भी भूतकाल, भविष्य काल और वर्तमान काल के विषयों के सम्बन्ध में जो इच्छा है उसे तनाव की उत्पति का कारण बताया गया है।[12] इच्छाओं के वशीभूत होकर व्यक्ति आर्तध्यान व रौद्रध्यान करता है। आर्तध्यान और रौद्रध्यान से तनाव उत्पन्न होता है, जो दूसरों को भी तनावग्रस्त कर देता है।[13] ठीक वैसे ही जैसे एक मछली पूरे तालाब को गंदा कर देती है। सुख की प्राप्ति में व्यक्ति कषाय प्रवृत्ति करता है। उत्तराध्ययन सूत्र में कषाय को अग्नि की उपमा दी गई है जो आत्मा के सद्गुणों को जलाकर नष्ट कर देता है।[14] व्यक्ति के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण है बुद्धि एवं विवेक, किन्तु जब क्रोध आता है तो बुद्धि एवं विवेक क्षमता समाप्त हो जाती है। जिस व्यक्ति की आंखों से लज्जा एवं करुणा झलकती है वह शान्ति प्रिय जीवन जीता है, पर जब मान अपना स्थान बना लेता है तो हर क्षण उस अहं को बनाए रखने का प्रयास मानवीय गुणों को समाप्त कर चित्त को अशान्त बना देता है। इसी प्रकार हिम्मत व तन्दुरुस्ती का स्थान क्रमशः हृदय व शरीर में होता है, लेकिन माया व लोभ तन-मन दोनों को तनावमय कर देते हैं और हिम्मत व तंदुरुस्ती दोनों अपना स्थान छोड़ देती है। जैन दर्शन के अनुसार परिग्रह भी जीवन में तनाव उत्पन्न करता है। संग्रह करने वाले व्यक्ति स्वयं भी चिंतित रहते हैं, व दूसरों की भी शान्ति भंग कर देते हैं।[15] सूत्रकृतांग में लिखा है कि हिंसा या युद्ध का कारण संग्रह की वृत्ति है।[16]

तनाव का प्रभाव

जब व्यक्ति तनावयुक्त जीवन जीता है तो उसका प्रभाव उसके शरीर, मन एवं भावों पर पड़ता है। उस समय उसके जीवन जीने का तरीका निम्न प्रकार का हो जाता है।

तनावों का दैहिक प्रभाव

1. तनावग्रस्त व्यक्ति को भूख नहीं लगती।
2. उसे नींद नहीं आती।

3. अनेक बीमारियां जैसे रक्तचाप, मधुमेह, हृदयघात उसके शरीर में घर कर लेती हैं।
4. वह कभी स्वयं को कष्ट देता है, तो कभी दूसरों के साथ मार-पीट करता है।
5. अगर तनाव की तीव्रता अधिक है तो वह अपना मानसिक संतुलन भी खो देता है।
6. वह अपने ही शरीर को नुकसान पहुंचाता है, आत्महत्या तक कर लेता है।
7. व्यक्ति आलसी व लापरवाह हो जाता है।

तनाव का मानसिक प्रभाव

1. व्यक्ति बात करते करते अचानक चुप हो जाता है ।
2. अंधेरे में रहना उसे अच्छा लगता है ।
3. किसी से बात करने की इच्छा नहीं होती है। वह एकांत प्रिय हो जाता है।
4. चिड़चिड़ाहट या क्रोध उसका स्वभाव बन जाता है ।
5. काम करते करते होश खो देता है।
6. उसकी सोचने समझने की शक्ति भी क्षीण हो जाती है।
7. व्यक्ति को रोने या विलाप करने से मन में हलकापन महसूस होता है।
8. व्यक्ति को सही गलत का ज्ञान नहीं रहता है।
9. निर्णय लेने की क्षमता नहीं होती।
10. शान्ति का अनुभव नहीं होने पर वह बेचैन रहता है।
11. कभी कभी चुपचाप वह हर पीड़ा सहन करता है तथा रोता रहता है।
12. पुरुषार्थ में कमी होने लगती है।

तनाव का भावनात्मक प्रभाव

1. मेरे साथ बुरा हुआ है, तो मैं भी सबका बुरा ही करूंगा। ऐसी भावना उत्पन्न हो जाती है।
2. नकारात्मक सोच जीवन का अंग बन जाती है।
3. आत्मविश्वास की कमी हो जाती है।
4. मन में ईर्ष्या की भावना उत्पन्न हो जाती है।
5. विवेकशीलता नष्ट हो जाती है।
6. कटु वचन बोलना उसकी रुचि बन जाती है।
7. वह इतना हताश हो जाता है कि जीवन में सिर्फ मृत्यु की इच्छा करता रहता है।
8. गलत संस्कृति अपनाता है, जैसे - सिगरेट पीना, शराब की लत लगा लेना आदि।

जब व्यक्ति तनावग्रस्त होता है तो तनाव स्तर को कम करने के लिए सिगरेट पीता

है। उसे लगता है कि उड़ते धुएँ में तनाव भी उड़ जाता है। किन्तु ऐसा सम्भव नहीं है। शराब के नशे से जब पुन: वास्तविकता में आता है तो मानसिक तनाव के साथ-साथ वह शारीरिक तनाव का शिकार हो जाता है। तनाव क्या है, इसके क्या कारण हैं और इसका क्या प्रभाव है, यह स्पष्ट रूप से हम सभी जानते हैं, परन्तु हमें जानना है कि तनाव को कम कैसे किया जाए, दूसरी भाषा में इसका प्रबन्धन कैसे किया जाए, यह जानना जरूरी है। मैं आपको जैन जीवन शैली के संदर्भ में तनाव प्रबन्धन से सम्बन्धित कुछ बिन्दु बताने जा रही हूँ:-

तनाव प्रबन्धन से वैयक्तिक शान्ति

जो जीया जाता है , वह जीवन होता है। जिस तरीके से जीवन जीया जाता है उसे जीवन शैली कहते हैं। जब व्यक्ति तनावमुक्त होता है तो उसका आचार, व्यवहार, विहार, आहार और संस्कार पांचों सम्यक् व कुशल होते हैं और जब तनावयुक्त स्थिति होती है तो विपरीत आचरण होता है। ये पाँचों ही जीवन शैली के मुख्य अंग हैं। वर्तमान युग में आवश्यकता है आचार में जैन जीवन शैली द्वारा बदलाव लाने की, पदार्थों के सही स्वरूप को जान कर संतुष्टि जगाने की, जीवन शैली को धर्म के द्वारा संयमित कर जीवन को तनावमुक्त बनाने की। वस्तुत: धर्म व्यक्ति को जीवन चलाने के साधन उपलब्ध नहीं कराता, अपितु जीने की वह कला सिखाता है जिससे मन अमन बन जाता है। मन में उत्पन्न तनाव व राग-द्वेष को धर्म से समाप्त किया जा सकता है।

वर्तमान युग की धारा में जैन धर्म व्यक्ति के जीवन में जिन तत्वों का समावेश करता है उससे तनावमुक्त जीवन शैली का निर्माण होता है। संक्षेप में तनाव निराकरण के उपाय निम्नलिखित हैं:-

1. आत्म-परिशोधन : विभाव दशा का परित्याग

जैन धर्म के अनुसार मोक्ष की प्राप्ति तभी सम्भव है जब व्यक्ति पूर्णत: तनावमुक्त होता है। आत्मा का विभाव दशा से स्वभाव में आना ही तनावमुक्ति है। आत्मा स्वभावत: तो शुद्ध बुद्ध और तनावमुक्त है, किन्तु 'पर' के संयोग से वह अशुद्ध या तनावयुक्त अवस्था को प्राप्त हो जाती है। ठीक वैसे ही जैसे अग्नि के संयोग से पानी अपना शीतल स्वभाव छोड़कर गर्म हो जाता है। आवश्यकता है आत्मपरिशोधन की, जो 'पर' के प्रति राग-द्वेष, कषाय, तृष्णा आदि को त्याग देने से ही सम्भव है।

2. रागद्वेष से मुक्ति ही तनाव से मुक्ति

जब तक राग था गौतम स्वामी को भी केवलज्ञान प्राप्त नही हुआ। उतराध्ययनसूत्र में कहा गया है कि राग-द्वेष के उन्मूलन से एकान्त सुख रूप मोक्ष की उपलब्धि होती है।[17]

उसमें स्पष्ट कहा गया है कि जिसका मोह समाप्त हो जाता है, उसका दु:ख समाप्त हो जाता है।[18] आचारांग में वर्णित है कि शब्द, रूप आदि के प्रति जो राग-द्वेष नहीं करता है वह मृत्यु से मुक्त हो जाता है।[19] समयसार में भी मुक्ति का मार्ग बताते हुए कहा है- ''मुंचदि जीवो विरागसंपत्तो'' जीव राग से विरक्त होकर कर्मो से मुक्त होता है, अत: तनावमुक्ति के लिए 'पर' के प्रति, इन्द्रिय-विषयों के प्रति राग का त्याग करना होगा। जहां राग समाप्त होता है वहां द्वेष भी नष्ट हो जाता है।[20]

3. कषाय विजय : तनावमुक्ति

दशवैकालिक सूत्र में क्रोध को समाप्त करने का उपाय बताते हुए कहा है कि - क्रोध को क्षमा से नष्ट करो।[21] समभाव से क्रोध को जीता जा सकता है। आस्रव, संवर एवं निर्जरा - भावना की अनुप्रेक्षा करनी चाहिए।[22] योगशास्त्र[23] एवं उत्तराध्ययन सूत्र[24] में क्रोध पर विजय पाने के लिए क्षमा शस्त्र का उपयोग करने हेतु कहा गया है। मान विनय का नाश करने वाला है, अत: मान पर विजय मृदुता अर्थात् विनम्रता से प्राप्त की जा सकती है।[25] आचारांगसूत्र[26] में कहा है - यह जीवात्मा अनेक बार उच्चगोत्र में जन्म ले चुका है, तो अनेक बार नीच गोत्र में भी। इस प्रकार विभिन्न गोत्रों में जन्म लेने से न कोई हीन होता है और न कोई महान्। ऐसी भावना से स्वंय को भावित करे। माया पर विजय ऋजुता से प्राप्त की जाती है। उत्तराध्ययन सूत्र में कहा भी है कि ऋजुभूत सरल व्यक्ति की ही शुद्धि होती है और सरल ह्रदय में ही धर्म रूपी पवित्र वस्तु ठहरती है।[27] तत्वार्थसूत्र में माया कषाय को अनन्त दु:खों और तिर्यंच गति का हेतु बताया गया है।[28] अत: मायावी स्वयं अपने जाल में फंस जाता है। दूसरों का बुरा करने में स्वयं का जीवन कष्ट में पड़ जाता है। लोभ-विजय के लिए लोभ मुक्त होने के क्या फायदे हैं, उनका चिन्तन करना चाहिए। लोभ-विजय से संतोष गुण उत्पन्न होता है। असातावेदनीय कर्म का बंध नहीं होता तथा पूर्वबद्ध कर्म की निर्जरा होती है।[29] इच्छाओं व आकांक्षाओं को अल्प करने का प्रयास करने से भी लोभ पर विजय प्राप्त की जा सकती है। योगशास्त्र में कहा है- संतोषरूपी बांध को बांध कर लोभ को आगे बढ़ने से रोका जा सकता है।[30]

4. इन्द्रिय विजय और तनाव मुक्ति

इन्द्रियों की लोलुपता में हर उम्र का व्यक्ति डूबा हुआ है। संसार में यह सम्भव नहीं है कि व्यक्ति अपने इन्द्रियों का प्रयोग नहीं करे। जब तक इन्द्रियां हैं, व्यक्ति का बाह्य जगत् से सम्पर्क भी होगा ही। ऐसी स्थिति में व्यक्ति तनावमुक्त कैसे हो, इस सम्बन्ध में तनावमुक्ति के लिए इन्द्रिय-विजय का मार्ग दिखाते हुए आचारांगसूत्र के द्वितीय श्रुतस्कंध

में पन्द्रहवें भावना नामक अध्ययन एवं उत्तराध्ययन में गम्भीरता से विचार किया गया है। यह सत्य नहीं है कि कानों में पड़ने वाले अच्छे या बुरे शब्द सुनने में न आएं, आँखों के सामने आने वाला अच्छा या बुरा रूप देखा न जाए, नाक के समक्ष आई हुई सुगन्ध या दुर्गन्ध सूंघने में न आए, रसना पर आया हुआ अच्छा या बुरा रस चखने में न आए, स्पर्श होने पर अच्छे या बुरे की अनुभूति न हो, ऐसा नहीं है, परन्तु सभी इन्द्रियों के प्रति जगने वाले राग-द्वेष को कम किया जा सकता है। धीरे-धीरे उस पर पूर्ण विजय पाई जा सकती है। मन का तो स्वभाव ही चंचलता है। इस चंचलता को ही समाप्त करना है, क्योंकि यही तनाव का कारण है। मन को नियंत्रित करने पर कल्पनाएँ भी संयमित हो जाती हैं। इच्छाएँ सीमित हो जाती हैं। सूत्रकृतांग में दुःखमुक्ति के लिए मनसंयम का मार्ग दिखाया गया है। मनः संयम का प्रयत्न ही तनाव मुक्ति का प्रयत्न है।

5. अणुव्रत की जीवन शैली

जीवन में अणुव्रत अपना कर जीना तनावमुक्ति का सबसे सरल उपाय है। अणुव्रत का अर्थ है छोटे छोटे नियम। जीवन में छोटे छोटे नियम लें। जैसे व्यसनमुक्त रहना, हर वस्तु का सीमाकरण करना, चोरी नहीं करना, झूठ नहीं बोलना आदि।

6. ममत्व त्याग या तृष्णा पर प्रहार

सूत्रकृतांग में वर्णित है ''ममाइं लुप्पई बाले''[31] जब तक ममत्व का त्याग नहीं होगा, तनावमुक्ति मिलना सम्भव नहीं है। मरुदेवी माता ने भी जब पुत्र से ममत्व का त्याग किया, तब केवलज्ञान प्राप्त हुआ। नन्दन मणियार ने ममत्व भाव से तिर्यंच गति का बंध किया। अतः 'स्व' को 'स्व' तथा 'पर' को 'पर' मान कर जीना चाहिए। जैन दर्शन में यहां तक भी कहा गया है कि आत्मा के सिवाय शरीर आदि कुछ भी तेरा नहीं है।[32] ममत्व के परित्याग से व्यक्तिगत संग्रह का भी त्याग होता है[33] तथा कामभोग, इच्छाएँ, आकांक्षाएँ भी समाप्त होती हैं।

7. इच्छा निर्मूलन की जीवन शैली

मनुष्य अनेकचित्त वाला है अर्थात् अनेकानेक कामनाओं के कारण मनुष्य का मन बिखरा हुआ है। इन कामनाओं की पूर्ति का प्रयास तो चलनी को भरने के प्रयास के समान है।[34] सभी इच्छाएँ कभी पूर्ण नहीं होती। वे आकाश के समान अनन्त हैं। एक इच्छा पूर्ण होने पर दूसरी इच्छा जाग्रत हो जाती है। इसलिए 'बारह भावना' में कहा गया है - हे धीर पुरुष आशा इच्छा का त्याग कर दो, क्योंकि तू स्वयं ही इन कांटों को मन में रखकर दुःखी (तनावग्रस्त) हो रहा है।[35] भगवान महावीर ने भी कहा है ''कामे कमियं खु दुक्खं''

कामनाओं-इच्छाओं को दूर करना ही तनाव (दुःख) को दूर करना है।

8. अनेकान्तवाद शैली

आज व्यक्ति ही नहीं, पूरा विश्व ही एकान्तवाद के सिद्धान्त पर चल कर एक दूजे को नष्ट करने में लगा हुआ है। ऐसी स्थिति में अनेकान्तवाद शान्ति का दूत है। व्यक्ति को अपने परिवार, समाज आदि दूसरों की बात को भी उसकी अपेक्षा से समझने का प्रयत्न करना चाहिए।

9. लेश्या परिवर्तन

हमारे भाव हमारी लेश्या का निर्धारण करते हैं और लेश्या हमारे भावों को परिवर्तित करती है। दोनों ही एक दूसरे पर आधारित है। तनावमुक्त जीवन के लिए हमारा प्रयत्न हो कि हम अशुभ लेश्या से शुभ लेश्या तक जाने का प्रयत्न करें। इसके लिए भाव शुद्धि आवश्यक है। साथ ही शुभ लेश्या के रंगों के ध्यान की प्रक्रिया भी प्रचलित है।

10. अहिंसक जीवन शैली

"धम्मो मंगलमुक्किट्ठं अहिंसा संजमो तवो।"[36] अहिंसा जैन धर्म का सर्वोपरि सिद्धान्त है। किसी जीव की हिंसा नहीं करना अहिंसा है। प्राणिमात्र की रक्षा करना अहिंसा है। भगवान महावीर के शब्दों में कहें तो "जो तुम अपने लिए चाहते हो वही दूसरों के लिए चाहो और जो तुम अपने लिए नहीं चाहते हो वह दूसरों के लिए भी मत चाहो।" यही अहिंसा है। दूसरे शब्दों में कहें तो मन, वचन व काया से न किसी की हिंसा करना, न करवाना और न ही करने वालों का अनुमोदन करना। अहिंसा शान्ति का संदेश लाती है। जैन धर्म के इसी सिद्धान्त को आधार बना कर महात्मा गांधी ने देश को तनावमुक्त करवाया था। अहिंसक जीवन शैली स्वयं को शान्त व सुखी तथा दूसरों को भी तनावमुक्त रखती है। हमारे अहिंसात्मक व्यवहार व विचार, हमारे सुसंस्कार व शुद्ध आचरण का निर्माण करते हैं। अहिंसक जीवन शैली केवल व्यक्ति के लिए ही नहीं, अपितु विश्व शान्ति का भी मूल मन्त्र है।

11. अपरिग्रह जीवन शैली

"कण संचय कीड़ी करे, ते तीतर चुग जाए,
जो कृपण धन संचिये, यूँ ही जाए विलाय"

आचार्य भिक्षु के इस कथन का मूल आधार आचारांग सूत्र है।[37] व्यक्ति धन का संचय करता है, लेकिन वह संचित धन या तो परिजनों के द्वारा बांट लिया जाता है या राजा के द्वारा उसका अपहरण कर लिया जाता है अथवा चोर चोरी करके ले जाता है अथवा तो

अग्नि आदि से नष्ट हो जाता है। व्यक्ति सर्वप्रथम धन अर्जित करने के लिए चिंतित होता है, अर्जित होने पर और अधिक पाने की लालसा करता है। संग्रह होने पर धन कहीं नष्ट न हो जाए इसकी चिन्ता से ग्रस्त रहता है। धन जीवन की आवश्यकता हो सकती है, किन्तु तनावमुक्ति के लिए उससे जुड़ी संग्रहेच्छा एवं आसक्तिवृत्ति का त्याग करना होगा। तभी व्यक्ति के जीवन में संतोष व शान्ति की प्राप्ति होगी।

12. आहार शुद्धि : तनावमुक्ति

एक प्रसिद्ध कहावत है – "जैसा खाए अन्न वैसा होवे मन।" इसका स्पष्ट उदाहरण है शाकाहारी व मांसाहारी व्यक्तियों की तुलना। बालक जब पहली बार मांसाहार करता है तब वह उसे सहज भाव से ग्रहण नहीं कर पाता। उस वक्त उसके अन्दर जो दया भाव है उसे वह मारता है, किन्तु इसका उसे पता भी नहीं चलता है। बड़ा होते होते उसके अंदर से दया, करुणा एवं प्रेम की भावना समाप्त हो जाती है। उसके हृदय में अपने स्वार्थ के लिए हिंसा, घृणा, क्रूरता आ जाती है। डॉक्टर सागरमल जैन ने इसी बात का स्पष्टीकरण करते हुए लिखा है कि मांसाहार से मस्तिष्क की सहनशीलता की शक्ति व स्थिरता का ह्रास होता है, वासना व उत्तेजना बढ़ाने वाली प्रवृत्ति पनपती है, क्रूरता एवं निर्दयता बढ़ती है। वर्तमान जीवन शैली में, संतुलित आहार के अभाव में जहाँ एक ओर लाखों लोग भूख से मरते हैं वहीं दूसरी ओर तामसिक आहार की लालसा व स्वाद लोलुपता के कारण अनेकों में तनाव उत्पन्न हो रहा है। जैन दर्शन में तनावमुक्तिपूर्वक जीवन जीने का एक आधार शाकाहार एवं संतुलित भोजन बताया है। महाभारत में भी लिखा है – जो मांसभक्षण कभी नहीं करता वह नीरोग एवं सुखी होता है।[38]

13. ध्यान और तनाव मुक्ति

वर्तमान में ध्यान की अनके विधियां प्रचलित हैं, किन्तु यहां ध्यान से मेरा तात्पर्य– धर्मध्यान व शुक्लध्यान से है। आर्त्तध्यान, रौद्रध्यान तनाव उत्पत्ति के हेतु हैं और धर्मध्यान व शुक्लध्यान तनावमुक्ति के साधन हैं। स्थानांगसूत्र[39-40] में धर्म व शुक्लध्यान की निरूपित व्याख्या के आधार पर यह कहा जा सकता है कि धर्मध्यान में श्रुतधर्म और चारित्र का चिन्तन किया जाता है जो कि चित्त को एकाग्र करता है एवं शुक्लध्यान द्वारा मन को शान्त तथा निष्कम्प किया जा सकता है। धर्मध्यान में स्थिरता के लिए एकत्व, अनित्य, अशरण एवं संसार ये चार अनुप्रेक्षाएँ बताई गई हैं। इन अनुप्रेक्षाओं के माध्यम से व्यक्ति धर्म के सही स्वरूप को समझ कर शुक्लध्यान की ओर अग्रसर होता है तथा शुक्लध्यानी ही मोक्ष को प्राप्त करता है। जैन दर्शन के अनुसार मोक्ष प्राप्ति ही पूर्णत: तनावमुक्ति की स्थिति है।

14. धर्म और तनावमुक्ति

व्यक्ति शान्ति प्राप्त करने के लिए धर्म का मार्ग चुनता है, किन्तु वर्तमान में धर्म, जाति और वर्ण के नाम पर दंगे किए जाते हैं। इसका कारण सूत्रकृतांग[41] में मिलता है कि धर्मत्व को प्रत्येक प्राणी अपनी-अपनी भूमिका के अनुसार पृथक्-पृथक् रूप से ग्रहण करता है और अपने पक्ष को सही मानकर दूसरे की अवहेलना करता है। तनावमुक्ति के लिए अगर धर्म को अपना साधन बनाना है तो उसके सही स्वरूप को समझना आवश्यक है। "वस्तु का अपना निज स्वभाव ही उसका धर्म है।[42]" जिस प्रकार पानी का धर्म है शीतलता, उसी प्रकार आत्मा का स्वभाव है शुद्धता, बुद्धता और मुक्तता। पानी 'पर' के सहयोग से गंदा या उष्ण होता है। 'पर' का वियोग होने पर शीतल व साफ हो जाता है, उसी प्रकार आत्मा राग-द्वेष, क्रोधादि कषाय के निमित्त से स्व-भाव से भिन्न हो अधर्म को प्राप्त होता है।[43] अधर्म ही एक ऐसी विकृति है, जिससे आत्मा में तनाव उत्पन्न होता है और धर्म ही एक ऐसा पवित्र अनुष्ठान है जिससे व्यक्ति तनावमुक्त अवस्था को प्राप्त करता है।[44]

उपर्युक्त सभी उल्लेखों से यह तो सिद्ध हो जाता है कि व्यक्ति को अपनी इच्छाओं का सीमांकरण करके जैन सिद्धान्तों के आधार पर जीवन जीना चाहिए, किन्तु यहाँ एक प्रश्न भी खड़ा होता है कि अगर व्यक्ति आकांक्षी नहीं बनेगा, कल्पनाएं कर इच्छाओं को नहीं बढ़ाएगा तो विकास कैसे करेगा, क्योंकि कुछ नया करने की इच्छाएँ, कल्पनाएँ दूसरों से आगे बढ़ने की प्रवृत्ति ही नए क्षितिज को बुनती है। किसी के अधिक परिग्रह को देख कर, उससे ईर्ष्या होने पर ही कोई नया आविष्कार होता है। इच्छा, ईर्ष्या व्यक्ति को उत्तेजित करती है कि वो ऊँचे मुकाम पर पहुँचे। विज्ञान में तनाव मुक्ति असम्भव है। तनावमुक्ति की अवस्था को प्राप्त करने के लिए आवश्यकता है कि जीने की कला में परिवर्तन हो। संक्षेप में ऐसे कुछ सूत्र प्रस्तुत हैं जो व्यक्ति के जीवन में विकास के साथ-साथ तनावमुक्त जीवन जीना सिखाते हैं।

1. विज्ञान + हिंसा	= विनाश	विज्ञान + अहिंसा = विकास
2. विज्ञान + एकांतवादिता	= (अशान्ति) वैचारिक संघर्ष और सामाजिक संघर्ष	विज्ञान + अनेकान्तवाद = शान्ति
3. विज्ञान + परिग्रहवृत्ति	= ईर्ष्या, असंतोष	विज्ञान + अपरिग्रह = संतुष्टि
4. विज्ञान + आसक्ति	= भय, संचयवृत्ति, युद्ध	विज्ञान + कर्त्तव्यबुद्धि = सफलता
5. विज्ञान + राग	= दुःख, पीड़ा	विज्ञान+वीतरागता= सुख, आनन्द
6. जीवन + असंयम	= तनावयुक्त जीवन	जीवन + अणुव्रत= तनावमुक्त जीवन

ये सूत्र ही जैन जीवन शैली को दर्शाने वाले हैं और इन्हें आधार बनाकर अगर

व्यक्ति अपना जीवन व्यतीत करे तो निश्चित ही वह तनावमुक्ति को प्राप्त कर सकेगा।

संदर्भः-

01 kttp.iiwww.fatfreekitchen.com

02. rebecca.j.frey,stressanswers.com

03 bykristi,a dyesmd.mstt from about.com

04. उत्तराध्ययन सूत्र - 32/101

05. आचारांग सूत्र - 3/2/118

06. उत्तराध्ययन सूत्र : दार्शनिक अनुशीलन एवं वर्तमान परिप्रेक्ष्य में उसकी महत्ता - साध्वी विनीतप्रभा जी, पृ. 242

07. वही - 32/7

08. अभिधान राजेन्द्र कोष खण्ड -2 पृष्ठ 575

09. उत्तराध्ययन सूत्र - 9/36

10. आचारांग सूत्र - 32/19

11. उत्तराध्ययन सूत्र - 32/119

12. अंगुत्तरनिकाय - 3/109

13. ध्यानशतक श्लोक 6 से 26 तक

14. उत्तराध्ययन सूत्र - 32/7

15. दशवैकालिक सूत्र - 8/38

16. उत्तराध्ययन सूत्र - 1/54

17. उत्तराध्ययन सूत्र - 32/8

18. वही - 32/2

19. आचारांग सूत्र - 3/1/108

20. समयसार - 150

21. दशवैकालिक- उवसमेण हणे कोहं। 8/39

22. बारह भावना

23. योग शास्त्र - 4/11

24. उत्तराध्ययन सूत्र - 29/68

25. दशवैकालिक - 8/38

26. आचारांग सूत्र - 1/2/3

27. उत्तराध्ययन सूत्र - 3/19

28. तत्त्वार्थ सूत्र - 6/17

29. उत्तराध्ययन - 29/70

30. योग शास्त्र - 4/22

31. सूत्रकृतांग - 2/1/1/14

32. सूत्रकृतांग - 2/1/13

33. आचारांग सूत्र - 1/2/6/99

34. आचारांग सूत्र - 1/3/2

35. आचारांग सूत्र - 1/2/4

36. दशवैकालिक सूत्र - 111

37. आचारांग सूत्र - 2/3/ 97

38. महाभारत, अनुशासन पर्व

39. स्थनांगसूत्र - 4/1/65

40. स्थानांगसूत्र - 4/1/68

41. सूत्रकृतांग - 1/5/11

42. कार्तिकेयानुप्रेक्षा - 478

43. स्थानांगसूत्र - 1/1/36

44. वही - 1/1/38

- जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूँ-341306 (राज.)

शाकाहार

शाकाहार की चेतना जगाने के उपाय

डॉ. दिलीप धींग

पिछली सदी में एक ओर देश-दुनिया में पशु-पक्षियों और जीव-जन्तुओं के प्रति करुणाभाव में कमी हुई है, दूसरी ओर करुणाशील व्यक्तियों की बदौलत इन मूक प्राणियों की रक्षा-सुरक्षा की दिशा में भी काफी कार्य हुआ है। लेकिन हिंसा के मुकाबले देखा जाए तो अहिंसा के कदम काफी धीमे हैं। मानवता और दुनिया को बचाने के लिए अहिंसा की सर्वत्र प्रतिष्ठा बेहद जरूरी है। अहिंसा की प्रतिष्ठा का प्रथम चरण और प्रमुख आधार शाकाहार है। आध्यात्मिक, वैज्ञानिक, नैतिक, शारीरिक, चिकित्सकीय, प्राकृतिक, आर्थिक और मानवीय; हर दृष्टि से शाकाहार की उपयोगिता सिद्ध हो चुकी है। शाकाहार प्रचार का अर्थ है - देश, जाति, वर्ण, पंथ आदि सीमाओं से ऊपर उठकर प्राणिमात्र के हित में मनुष्य और मनुष्यता की सेवा करना। यह दुःखद है कि हमारे द्वारा चुनी हुई सरकारें हमारे इस कल्याणकारी कार्य में वांछनीय सहयोग नहीं देती हैं। इस सम्बन्ध में मीडिया की अपेक्षित भूमिका का भी अभाव दिखाई देता है। यदि न्यायपालिका इस सम्बन्ध में विशेष सजग और सक्रिय बन सके तो बहुत बड़ा कार्य हो सकता है।

शाकाहार सबकी अनिवार्यता है, लेकिन इसके प्रति प्रतिबद्धता सबकी नहीं है। जन-जन को शाकाहार की उपयोगिता बताने, शाकाहार, सदाचार और व्यसन-मुक्ति की सत्प्रेरणा देने के लिए पूरी शक्ति व सामर्थ्य के साथ कार्य करने की आवश्यकता है। यहाँ बताए जा रहे तथ्यों को ध्यान में रखकर हर वर्ग, श्रेणी और समुदाय के व्यक्ति शाकाहार-प्रचार की दिशा में कुछ-न-कुछ प्रशस्त योगदान अवश्य कर सकते हैं।

1. शाकाहारी भी शाकाहार-साहित्य पढ़ें और जानें कि शाकाहार क्यों श्रेष्ठ है, ताकि मांसाहारियों की दलीलों, कुतर्कों तथा प्रश्नों का सही व समाधानपरक उत्तर दे सकें।
2. अपने घर, दफ्तर और प्रतिष्ठान में शाकाहार-साहित्य, लघु-पुस्तकें, स्टीकर आदि रखें। आगन्तुकों एवं मित्रों को प्रेरणा दें, शाकाहार विषयक सामग्री दें और शाकाहार अभियान में उन्हें भी सम्मिलित करें।
3. जो व्यक्ति गोरक्षा तथा स्वदेशी वस्तुओं के प्रचार-प्रसार में लगे हैं, उन्हें शाकाहार प्रचार को भी स्पष्टरूपेण अपने अभियान का हिस्सा बनाना चाहिये। स्वदेशी, गोरक्षा और शाकाहार परस्पर जुड़े हुए विषय हैं।

4. संघ, संगठन, संस्था और समुदाय के स्तर पर भी शाकाहार प्रचार और जीवदया के कार्य किये जाने चाहिये, जैसे - व्याख्यानमाला, अहिंसा कवि-सम्मेलन, विचार-गोष्ठी, प्रदर्शनी, प्रतियोगिताएँ, रैलियाँ आदि। जब भी ऐसा कोई आयोजन करें तो अखबारों में समाचार अवश्य भेजें। कोशिश करें कि इलेक्ट्रोनिक मीडिया भी ऐसे प्रेरक कार्यक्रमों को प्रसारित करें।
5. लेखक, कवि और कथाकार शाकाहार-विषयक नित नई मौलिक रचनाएँ लिखें अथवा अपनी रचनाओं में अहिंसक मूल्य समाविष्ट और प्रतिष्ठित करें। जो चित्रकार हैं, उन्हें चित्रकला में करुणा और जीवदया को समाविष्ट करना चाहिये। जादूगर तथा अन्य कलाकार अपनी कला में अहिंसा और जीवरक्षा से सम्बन्धित कार्यक्रम बनाएँ और प्रस्तुत करें।
6. अहिंसा, शाकाहार और जीवदया की महत्ता उजागर करने वाले नये अनुसंधान और प्रयोग करें व करवाएँ। अहिंसा की उपादेयता बढ़ाने वाले शोध-निष्कर्षों का प्रचार-प्रसार करें।
7. जो युवा सोशल मीडिया (फेसबुक, ट्विटर आदि) से जुड़े हैं, वे सोशल मीडिया के माध्यम से अहिंसा और शाकाहार से सम्बन्धित प्रेरक सामग्री सन्दर्भ के साथ पोस्ट करें। ऐसी उपलब्ध सामग्री को पसन्द और शेयर करने के साथ उस पर अपनी प्रभावी राय भी दें।
8. अखबारों में यदि शाकाहार, जीवदया, पशु-रक्षा, व्यसन-मुक्ति आदि से सम्बन्धित कोई लेख, विचार, समाचार आदि प्रकाशित हो तो उसके समर्थन में सम्पादक को पत्र अवश्य लिखें। यदि सामग्री अहिंसा और शाकाहार के विरोध में हो तो उसके विरोध में भी तर्कपूर्ण पत्र लिखें।
9. अध्यापकों को चाहिये कि वे अपने विद्यार्थियों को पाठ्यक्रमेतर शिक्षा में शाकाहार और व्यसन-मुक्ति की महत्ता बताएँ। कितने ही अध्यापक इस कार्य को बहुत ही विवेक से गति दे रहे हैं। सरकार द्वारा मान्य संस्था करुणा इंटरनेशनल, चेन्नई ने देश की लगभग दो हजार शिक्षण-संस्थाओं में करुणा क्लब स्थापित करके शिक्षक और विद्यार्थी समुदाय में शाकाहार, पर्यावरण और नैतिक शिक्षा के पक्ष में वातावरण बनाने का सराहनीय प्रयास किया है। प्रत्येक विद्यालय को संस्था से सम्पर्क करके अपने यहाँ करुणा क्लब संचालित करना चाहिये। स्वतंत्र रूप से भी शिक्षण संस्थाओं में अहिंसा व करुणा के कार्य और कार्यक्रम किये-करवाये जा सकते हैं।
10. आयुर्विज्ञान (मेडिकल साइंस) की दृष्टि से भी शाकाहार की उपादेयता सिद्ध हो चुकी है। इस परिप्रेक्ष्य में चिकित्सक अपने मरीजों को यदि शाकाहार और व्यसन-मुक्ति

की महत्ता बता सकें तो क्रान्तिकारी कार्य हो सकता है। अनेक चिकित्सक इस कार्य को आगे बढ़ाकर मानवता की सेवा कर रहे हैं। चिकित्सा जगत् में शाकाहार के प्रति जागरूकता को और बढ़ाने की जरूरत है।

11. यदि प्रयास किया जाए तो व्यवसायी अपने ग्राहकों को तथा नियोक्ता अपने कर्मचारियों को शाकाहार का सन्देश दे सकते हैं। व्यापारी यह संकल्प करें कि उनकी दुकान से लाल निशान वाले खाद्य पदार्थ, अण्डा आदि हिंसाजन्य उत्पादों की बिक्री नहीं हो।

12. अहिंसा में विश्वास रखने वाले ग्राहक यह विवेक रखें कि यदि विकल्प मौजूद हो तो उन दुकानों से सामान नहीं खरीदें जहाँ हिंसाजन्य उत्पाद भी बेचे जाते हैं। सामूहिक जागरण द्वारा ऐसी अहिंसक स्पर्धा पैदा की जानी चाहिये। शाकाहारी क्षेत्रों में यह कार्य अधिक आसानी से किया जा सकता है। यदि हिंसा का विरोध संभव नहीं हो तो हिंसा का असहयोग तो किया ही जा सकता है।

13. चमड़ा, रेशम, क्रूरता से प्राप्त सौन्दर्य प्रसाधनों तथा उन वस्तुओं के क्रय, विक्रय और उपयोग से बचें, जिनमें पशु-पक्षियों और जीव-जन्तुओं की हिंसा जुड़ी हुई है।

14. अपने व्यावसायिक पत्रों, विज्ञापनों, लिफाफों, उत्पादों, वाहनों आदि में शाकाहार समर्थक वाक्य लिखें। शाकाहार समर्थक मुहरें बनाएँ और लगाएँ।

15. सार्वजनिक स्थानों और प्रतिष्ठानों में अधिकृत व्यक्ति की अनुमति से शाकाहार सम्बन्धी नारे और प्रेरक-वाक्य लिखवाएँ।

16. पशु-पक्षियों और जीव-जन्तुओं के प्रति दयाभाव रखने के पक्ष में कुछ कानून भी बने हुए हैं। जैसे पशु-पक्षी क्रूरता निवारण अधिनियम, वन्य जीव-संरक्षण अधिनियम आदि। प्रादेशिक स्तर पर पशु-पक्षी बलि निषेध अधिनियम, गोरक्षा कानून आदि बने हुए हैं। प्रबुद्धजनों को चाहिये कि ऐसे कानून और उनके प्रावधानों के बारे में जनचेतना जगाएँ। गैर-कानूनी कार्यों के विरोध में अपनी आवाज उठाएँ। गैर-कानूनी कृत्यों पर मीडिया भी अपनी सजगता का परिचय दें।

17. सरकार द्वारा घोषित अमारियों (अहिंसा दिवसों) के सही व पूर्ण अनुपालन के लिए प्रयास करें। इस सम्बन्ध में सरकार, समाज और मीडिया से सहयोग लें और दें। किसी पुनीत उद्देश्य या पर्व पर शासन-प्रशासन से अहिंसा दिवस घोषित करवाएँ।

18. यह तथ्य है कि मांसाहार पर्यावरण तथा करुणा आदि जीवन-मूल्यों को भारी नुकसान पहुँचाता है। हम सरकार को इस बात के लिए राजी करें कि मांसाहार को राज्याश्रय नहीं मिले। मांसाहार और मांसजन्य उत्पादों पर अधिक दर से कर (टैक्स) लगाया जाए।

19. अहिंसा, शाकाहार और जीवदया के किसी भी रूप में कार्य करने वालों का अपनी

सामर्थ्य के अनुसार सहयोग करें। अहिंसा के पावन कार्य में पंथवाद या किसी तरह के मतभेद को बाधक नहीं बनने दें।

20. शाकाहारी व्यक्ति तथा विशेष तौर पर करुणा व शाकाहार अभियान से जुड़े महानुभाव कोई ऐसा कार्य नहीं करें, जिससे उनकी शाकाहारिता लज्जित हो जाए। शाकाहारियों के व्यवहार में अहिंसा और शाकाहार के सद्गुण प्रकट होने चाहिये।

शाकाहार प्रचार की दिशा में ये उपाय अन्तिम नहीं हैं। हर व्यक्ति को अपनी शक्ति, सामर्थ्य, बुद्धि, समझ और योग्यता के अनुसार शाकाहार के लिए जितना/जैसा संभव हो, उतना/वैसा अवश्य करना चाहिये। अहिंसा, शाकाहार और सदाचार का प्रचार-प्रसार करना आपका-हमारा पुनीत कर्तव्य है। मेरे एक मुक्तक के साथ इस लेख को विराम देता हूँ:-

प्यार-सहकार-शान्ति के पौधे लगाइये।
युद्ध, हिंसा, आतंक और क्रूरता भगाइये।
पर्यावरण और प्रकृति विषम न बने इसलिए,
जन-जन में शाकाहार की चेतना जगाइये।।

-Director : International Centre for Prakrit Studies & Research
18, Raanuja Iyer Street, Sowcarpet, Chennai-600001

भला होने का अर्थ

एक साधक संत

यदि आप अपनी वर्तमान निर्दोषता को सुरक्षित नहीं रख सकते, की हुई भूल को दोहराना ही चाहते हैं, जानी हुई बुराई को करना ही चाहते हैं, तो दुनियाँ में किसी की शक्ति नहीं है, जो आपको शान्ति दे सके, जो आपको प्रसन्न रख सके। आपकी शान्ति आपके अधीन है, आपकी प्रसन्नता आपके अधीन है, आपकी महिमा आपके अधीन है। यह स्वाधीनता मंगलमय विधान से प्रत्येक भाई को, प्रत्येक बहिन को मिली है। इस मिली हुई स्वाधीनता का आदर करें, उपयोग करें। आप अपने को दूसरों की दृष्टि में जैसा देखना चाहते हैं, अपनी दृष्टि में हो जायेंगे। यह कसौटी है कि जब हम अपनी दृष्टि में सुन्दर हो जाते हैं, तब सुन्दर कहलाने की रुचि नाश हो जाती है। आज यदि हम चाहते हैं कि लोग हमें भला समझें, तो उसका अर्थ है कि हम सचमुच उतने भले नहीं हैं। लोग तो भला समझते ही हैं, लोग तो भला समझेंगे ही, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि हम भले हो गये। भले होने की कसौटी यह है- भले कहलाने की रुचि नाश हो जाय, जीवन में यह प्रश्न ही न आये कि लोग हमें भला समझे। जिसे यह मालूम होता है कि मैं ईमानदार हूँ, लोग मुझे ईमानदार मानें, तो समझना चाहिए कि इसमें कोई बेईमानी छिपी हुई है।

प्रासङ्गिक

मांस-निर्यात नीति पर पुनर्विचार आवश्यक

डॉ. एन. के. खीचा (सेवानिवृत्त आर.ए.एस.)

राज्यसभा की याचिकाओं की समिति ने अपनी 151 वीं रिपोर्ट 13 फरवरी 2014 को राज्यसभा में प्रस्तुत कर देश की मांस-निर्यात नीति पर तीन माह की अवधि में पुनर्विचार किए जाने की अनुशंसा की है। साथ ही उन्होंने मांस-निर्यातकों को दी जा रही आर्थिक रियायतों को तुरंत समाप्त किए जाने की भी सिफारिश की है।

भारत से प्रतिवर्ष एक करोड़ भैंसों का मांस विदेशों को निर्यात किया जा रहा है। इस कारण सारे देश में पशुधन में कमी आती जा रही है, दूध के भाव बढ़ते जा रहे हैं एवं मिलावटी दूध बाजार में विक्रय किया जा रहा है।

मांस निर्यातकों को एक भैंस से औसतन 110 किलोग्राम मांस की प्राप्ति होती है। वर्ष 2011-12 में 89.59 लाख व 2012-13 में 100.63 लाख अर्थात् एक करोड़ से अधिक भैंसों का कत्ल सिर्फ मांस निर्यात के लिये किया गया है। इसी प्रकार विगत छह वर्षों का भैंस के मांस का निर्यात लें तो 42.57 करोड़ किलोग्राम मांस निर्यात किया गया, जिसके लिए 3.87 करोड़ भैंसों का कत्ल इस अवधि में किया गया। यदि प्रतिवर्ष एक करोड़ भैंसों का कत्ल करना जारी रहा तो 8-10 वर्ष पश्चात् हमारे देश में भैंसों की संख्या नगण्य रह जाएगी एवं उसका सीधा असर दुग्ध उत्पादन पर पड़ेगा, क्योंकि हमारे देश के दुग्ध उत्पादन का करीब 60 प्रतिशत दूध भैंसों से ही प्राप्त होता है। दूध की कीमत जो वर्तमान में 40-42 रुपये प्रति लीटर है, वह बढ़कर कुछ ही वर्षों में 100 रुपये प्रति लीटर तक होने की संभावना है।

संविधान के नीति निर्देशक तत्त्वों के अनुच्छेद 47 के प्रावधानों के अनुसार राज्य का यह कर्त्तव्य है कि वह आमजन के स्वास्थ्य को दृष्टिगत रखते हुए भोजन-तत्त्वों की उपलब्धता सुनिश्चित करे तथा आमजन के स्वास्थ्य को विकसित करने का प्रयास करे।

जैनाचार्य श्री विजयरत्नसुन्दर सूरीश्वर जी महाराज द्वारा श्री एस.एस. आहलूवालिया, पूर्व सांसद के माध्यम से मांस-निर्यात नीति के पुनरवलोकन हेतु राज्यसभा में याचिका प्रस्तुत की गई, जिसकी सुनवाई राज्यसभा द्वारा गठित समिति के माननीय सदस्यगण द्वारा की गई है एवं अपनी रिपोर्ट संख्या 151 दिनांक 13.02.2014 को राज्यसभा के समक्ष प्रस्तुत की जा चुकी है। इससे अब यह प्रश्न आमजन के लिए बहस का विषय हो गया है कि

क्या वर्तमान मांस-निर्यात नीति को जारी रखा जाए अथवा मांस-निर्यात पर प्रतिबंध लगा दिया जाए?

इस संबंध में विचारणीय प्रश्न है कि जो मांस-निर्यात नीति सन् 1991-92 में देश की परिस्थितियों के अनुसार बनाई गई थी, उसमें पुनरवलोकन किया जाना आवश्यक है। क्योंकि उस समय हमारे देश को विदेशी मुद्रा की महती आवश्यकता थी, लेकिन आज जो विदेशी मुद्रा मांस निर्यात से प्राप्त हो रही है, उसके मुकाबले अन्य साधनों से हमारे देश को प्राप्त विदेशी मुद्रा कहीं अधिक है।

मांस निर्यात को दी जाने वाली सुविधाएँ- **1.** मांस ट्रांसपोर्ट इकाई हेतु 25 प्रतिशत अनुदान, **2.** प्री-कूलिंग सुविधा पर 50 प्रतिशत अनुदान, **3.** वाष्प-ताप ट्रीटमेंट हेतु 50 प्रतिशत अनुदान, **4.** कोल्ड स्टोर्स (समुद्री बंदरगाह व एअरपोर्ट पर) 100 प्रतिशत एअरपोर्ट व समुद्री बंदरगाह अथोरिटी को देय, **5.** प्रोडक्ट लिटरेचर पर 40 प्रतिशत अनुदान, **6.** ब्रांड पब्लिसिटी पर 40 प्रतिशत अनुदान, **7.** पैकिंग डवलपमेंट पर 60 प्रतिशत अनुदान, **8.** पैकिंग पर 30 प्रतिशत अनुदान, **9.** क्वालिटी कन्ट्रोल पर 50 प्रतिशत अनुदान, **10.** आईएसओ 9000 हेतु कन्सलटेंसी पर 50 प्रतिशत अनुदान, **11.** कत्लखाने को अपग्रेड करने पर 50 प्रतिशत अनुदान, **12.** सुपरवीजन स्टाफ के तकनीकी शिक्षण-प्रशिक्षण पर 50 प्रतिशत अनुदान, **13.** हवाईजहाज के किराये पर 25 प्रतिशत अनुदान। इन अनुदानों को तुरन्त प्रभाव से समाप्त किया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त मांस निर्यातकों को आयकर अधिनियम में दी जाने वाली विभिन्न छूटों को भी समाप्त किया जाना चाहिए।

मांस-निर्यात का कार्य खाद्य प्रसंस्करण उद्योग मंत्रालय तथा कृषि एवं प्रसंस्कृत खाद्य उत्पाद निर्यात-विकास प्राधिकरण द्वारा किया जाता है। कृषि एवं प्रसंस्कृत खाद्य उत्पाद निर्यात विकास प्राधिकरण मांस-निर्यात संवर्धन का कार्य तो करता है, लेकिन उस विभाग को यह पता नहीं होता है कि मांस-निर्यात हेतु कितने पशुओं का वध किया गया है।

मांस-निर्यात हेतु किए जा रहे पशुवध के कारण अच्छी गुणवत्ता वाली खाद जैसे गोबर, गोमूत्र आदि का अभाव हो रहा है तथा विदेशों से रासायनिक खाद व कीटनाशक दवाओं का आयात करना पड़ रहा है, जिससे विदेशी मुद्रा का अपव्यय हो रहा है। मांस निर्यात प्रतिबंधित किए जाने पर हमें प्रचुर मात्रा में देशी खाद उपलब्ध रहेगा तथा रासायनिक खाद व कीटनाशक दवाओं को आयात नहीं करना पड़ेगा तथा हमारे देश की विदेशी मुद्रा की बचत होगी।

देश की जनसंख्या को दृष्टिगत रखते हुए दुधारू पशुओं का मांस-निर्यात पूर्णतः प्रतिबंधित किया जाना चाहिए। बूढ़े एवं अशक्त पशुओं की सुरक्षा का देश में कोई कानून नहीं है, जबकि वन्य जीव सुरक्षा अधिनियम, 1972 वन्य जीवों एवं पक्षियों की सुरक्षा की गारंटी देता है।

अन्तरराष्ट्रीय पर्यावरण समिति की रिपोर्ट के अनुसार एक किलो मांस के उत्पादन में करीब 25 लीटर पानी का अपव्यय होता है, इससे 5.5 मिलियन टन मांस उत्पादन में कितने भारी पानी का अपव्यय हो रहा है, यह भी विचारणीय प्रश्न है तथा इससे भूजल स्तर दिन प्रतिदिन नीचे जा रहा है।

अशक्त पशुओं के चारे की कोई समस्या नहीं है। पंजाब, हरियाणा, उत्तरप्रदेश व उत्तरी-पूर्वी राजस्थान में किसानों को भण्डारण की सुविधा न होने से चारे को खेतों में ही जला दिया जाता है या अन्य प्रकार से नष्ट कर दिया जाता है। परिणामस्वरूप चारे को विभिन्न उद्योगों द्वारा ईंधन के काम में लिया जाने लगा है। यदि चारे के भण्डारण व वितरण की समुचित व्यवस्था की जाए व उसके अन्यत्र उपयोग को प्रतिबंधित कर दिया जाए तो हमारे देश में चारे का कोई संकट नहीं है।

मांस निर्यात से जैन ही नहीं, सभी धर्मावलम्बियों की भावनाओं को ठेस पहुँचती है, जिसके कारण संविधान की मूल भावना का उल्लंघन हो रहा है।

संविधान के अनुच्छेद 48 के अनुसार प्रत्येक राज्य को पाबंद किया जाना चाहिए कि वे पशुधन विनाश पर सख्ती से नियंत्रण करें व उनकी नस्ल सुधार के लिए योजनाबद्ध कार्य करें। राज्यसभा की याचिका समिति की रिपोर्ट संख्या 151 पर शीघ्र निर्णय लिये जाएं।

-544-ए, सिद्धार्थ नगर, जवाहर सर्किल के पीछे, जयपुर-302017 (राज.)

गृह शान्ति

श्री शान्तप्रकाश सत्यदास

यह अच्छी तरह याद रखिये कि ग्रह शान्ति से गृह शान्ति नहीं हो सकती है, क्योंकि-

संयम और समझदारी से ही होती है घर में शान्ति।
नवग्रहों की शान्ति करे गृहशांति- अरे यह सचमुच भ्रान्ति।।

इसलिए नवग्रह-पूजा, जप-होम आदि सब ढकोसले हैं, जो पुरोहितों या पण्डे-पुजारियों के द्वारा अपना-अपना पेट पालने के लिए प्रचलित कर दिये गये हैं। इन अनुष्ठानों से गृहस्थों के धन का अपव्यय ही होता है; किन्तु उन्हें लाभ कुछ भी नहीं होता। -*'चिन्तन-तनया' पुस्तक से साभार*

परिवार-स्तम्भ

ग्रीष्मावकाश का धार्मिक सदुपयोग कैसे हो?

श्री पारसमल चण्डालिया

स्कूल हुए बंद और मस्ती के दिन हो गए शुरु। इंतजार खत्म, अब ना होमवर्क की चिंता न टीचर की डांट की। बिंदास मस्ती, शरारतें ही शरारतें। आखिर साल भर के लंबे इंतजार के बाद गर्मियों की छुट्टियाँ मतलब हल्ला-गुल्ला, मौजमस्ती और धूम-धड़ाका। इस मस्ती भरे माहौल में उत्साह, जोश और उमंग से कुछ नया सीख लिया जाए तो कहना ही क्या? एन्जॉयमेंट तो है ही साथ ही क्रिएटिविटी को भी नई दिशा मिले यानी छुट्टियों में खेलने, कूदने, मौजमस्ती के साथ बच्चों को उन्हें कुछ सीखने के लिए प्रेरित किया जाए तो यह उनके व्यक्तित्व विकास के लिए बेहतर होता है। वैसे तो छुट्टियाँ आते ही समर केंप और हॉबी क्लासेज शुरु हो जाती हैं और माता-पिता भी चाहते हैं कि बच्चे अपने समय का सदुपयोग इस तरह करें कि भविष्य में वह चीज उनके काम आए। ग्रीष्मावकाश के समय का सम्यक् उपयोग करने के लिए अभिभावकों का उचित मार्गदर्शन आवश्यक है। अभिभावक गण बच्चों के समय को निम्नानुसार व्यवस्थित करने के लिए प्रेरणा कर सकते हैं।

1. समय का सम्यक् नियोजन करें- छुट्टियों में अधिक काम करने होते हैं। छुट्टियों के कठिन कामों को सहज/सरल बनाकर प्रस्तुत करना चाहिये। ताकि बच्चे मनोरंजन के साथ शिक्षा ग्रहण कर सकें वरना छुट्टी का महत्त्व क्या होगा? दरअसल खेल भी काम है और काम भी खेल। महत्त्व हमारे मनोभाव का है। छुट्टियों में प्रायः कार्यों की कोई समय तालिका भी नहीं होती। इसलिए एक ओर समय काटे नहीं कटता तो दूसरी ओर सारा समय यूं ही बीत जाता है। इसलिए आवश्यक है कि छुट्टियों में किए जाने वाले कार्यों की सूची बनाई जाए। क्योंकि आनन्द से जीना है तो समय को नियोजित करना सीखना पड़ेगा। समय तालिका बनाकर ग्रीष्मावकाश के समय का सदुपयोग किया जाये।

2. बड़ों के अनुभवों का लाभ लें- छुट्टियों में दादा-दादी, नाना-नानी और माता-पिता के सान्निध्य में रह कर धर्म, जीवन और जगत् के बारे में अपनी शंकाओं का समाधान प्राप्त करें। बड़ों के दीर्घ अनुभवों से बहुत कुछ सीखते हुए समय का सदुपयोग किया जा सकता है। वृद्धों का जीता-जागता, चलता-फिरता अनुभव बच्चों को रोमांचित करता है। बच्चे अनेकानेक प्रश्नों का समाधान प्राप्त कर बहुत कुछ जानना-समझना चाहते हैं। अतः बच्चों द्वारा निर्मित छुट्टियों की समय तालिका में यह काम भी आना चाहिए।

3. धर्म संस्कारों का प्रशिक्षण प्राप्त करें– गर्मी की छुट्टियों में कई प्रकार के विशेष प्रशिक्षण दिए जाते हैं उनमें प्रमुख है– धार्मिक शिक्षण, धर्म संस्कारों का प्रशिक्षण।

शिक्षा के साथ संस्कार जरूरी हैं। बालक–बालिकाएँ वर्ष भर स्कूली पाठ्यक्रम (शिक्षा) पढ़ने में व्यस्त रहते हैं, उनको नैतिक शिक्षा एवं संस्कार प्राप्त नहीं हो सकते हैं। दुर्भाग्य से आज शिक्षा के नाम पर जानकारी का आकलन करना ही मुख्य है उसे जीवन में उतारने का प्रशिक्षण नहीं दिया जाता। अतः ज्ञान दृष्टिहीन बन गया, लक्ष्यहीन बन गया है। विचार आचार के साथ मेल नहीं हो पाने के कारण कथनी और करनी में अंतर बढ़ता जाता रहा है। दिमाग का आकार फैलता जा रहा है और हृदय का रस सूखता जा रहा है।

इसलिए आज की सबसे बड़ी आवश्यकता उस शिक्षा की है जो हमारी सुषुप्त आत्म-शक्ति को जगा सके, जो हमारी नयी पीढ़ी में सद्गुणों का विकास कर सके, जो हममें भाईचारा, सर्वधर्म सहिष्णुता और सर्व जाति समभाव जैसी विश्वजनीन भावनाओं का उद्रेक कर सके। जब तक व्यावहारिक शिक्षण के साथ नैतिक शिक्षण की यह कार्य पद्धति नहीं जुड़ जाती तब तक अवकाश के समय आयोजित होने वाले धार्मिक संस्कार शिविर ही इस कमी को पूरी करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकते हैं। क्योंकि इन शिविरों के माध्यम से अवकाश का उपयोग योजनाबद्ध तरीके से संस्कार निर्माण में किया जाता है, जिससे वैचारिक क्रांति और मूल्य निर्धारण की प्रक्रिया में बड़ी सहायता मिलती है।

अतः हमारा पुनीत कर्त्तव्य और दायित्व है कि हम ग्रीष्मावकाश का सदुपयोग बच्चों में अच्छे संस्कार पैदा करने हेतु करें। यदि ये सुसंस्कार पैदा नहीं किये जाते तो बच्चों के साथ-साथ पूरा समाज भी बिगड़ता है। बच्चों को संस्कारित करने के लिए ही छुट्टियों में धार्मिक शिक्षण संस्कार शिविर आयोजित किये जाने लगे हैं। इन शिविरों के माध्यम से बालकों में सदाचार, स्नेह, सहनशीलता, सत्यता, संयम तथा अनुशासन आदि सद्गुणों का विकास होता है। शिविर का छोटा-सा समय भी नैतिक संस्कारों को दृढ़ करने का अनुपम साधन है। शिविर बालकों को शिक्षित होकर विवेक पूर्वक कार्य करने की प्रेरणा प्रदान करता है। अतः धार्मिक संस्कार शिविर समय की पुकार है, मांग है। बालक-बालिकाओं को इन शिक्षण शिविरों में भेजकर अभिभावक अपना कर्त्तव्य पूरा करें। शिविरार्थियों के शब्दों में शिविर की उपयोगिता–

कृपा आपकी हम बलिहारी हो गये, पिछलग्गू बने थे अगाड़ी हो गये।
जीने की कला सिखाई शिविर ने, हम तो अनाड़ी थे, खिलाड़ी हो गये।।

-7/14, उत्तरी नेहरु नगर, बिट्ठल बस्ती, ब्यावर-305901 (राज.)

नारी-स्तम्भ

जैन संस्कृति में नारी की स्थिति

डॉ. मीनाक्षी जैन डागा

"**यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।**" जहाँ नारी की पूजा होती है, वहाँ देवता रमण करते हैं। यह है भारतीय संस्कृति में नारी का सम्मान एवं गौरव। संपूर्ण भारतीय वाङ्मय में नारी का माता, पुत्री, बहिन, पत्नी आदि विभिन्न रूपों में बहुत ही सम्मानजनक स्थान रहा है। जैन संस्कृति भारतीय संस्कृति का महत्त्वपूर्ण हिस्सा है। इसकी सहगामी वैदिक अथवा ब्राह्मण संस्कृति सर्वथा पृथक् कभी नहीं रह पायी। सामाजिक जीवन में दोनों ही संस्कृतियाँ एक दूसरे की सहभागी प्रतीत होती हैं। विदेशी संस्कृतियों एवं आक्रान्ताओं से ये बहुत भिन्न हैं, लेकिन आध्यात्मिक क्षेत्र में नारी विकास की सर्वोच्चता को जैन धर्म ने ही प्रतिपादित किया है। यहाँ हम मुख्य रूप से जैन संस्कृति में नारी-विकास का ही अवलोकन करेंगे।

ऋषभदेवकालीन युग में नारी को स्वतन्त्र रूप से विकसित और पल्लवित होने की पूर्ण सुविधाएँ प्राप्त थीं। वह पुरुष की अनुगामिनी थी, दासी नहीं। उसका अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व था तथा समाज का नारी के प्रति उदात्त दृष्टिकोण था। नारी उदार, ममतामयी तथा वैभव एवं सौभाग्य की अधिष्ठात्री थी। नारी अन्तःपुर में केवल केलि-क्रीड़ा का साधन नहीं थी, वरन् वे अपने आत्मोत्थान में निरत रहकर आत्मकल्याण करने के लिए भी स्वतंत्र थीं। जीवन का सर्वोच्च अन्तिम लक्ष्य मोक्ष कहा गया है। उसे सर्वप्रथम प्राप्त करने वाली भी एक नारी थी- भगवान् ऋषभदेव की माता मरुदेवी।

समाज में कन्या की स्थिति वर्तमान काल की अपेक्षा अच्छी थी। माता-पिता कन्या-जन्म को अभिशाप नहीं मानते थे। आदि तीर्थंकर ऋषभदेव ने अपनी पुत्रियों का पालन पुत्रों के समान ही किया था अर्थात् पुत्रों एवं पुत्रियों के लालन-पालन में कोई भेदभाव नहीं था। ऋषभदेव ने अपनी पुत्रियों को उद्‌बोधित किया कि इस लोक में विद्यावान व्यक्ति पण्डितों के द्वारा भी सम्मान को प्राप्त होता है और विद्यावती स्त्री भी सर्वश्रेष्ठ पद को प्राप्त होती है। विद्या ही मनुष्यों का बन्धु है, विद्या ही मित्र है, विद्या ही कल्याण करने वाली है, विद्या ही साथ-साथ जाने वाला धन है और विद्या ही सब प्रयोजनों को सिद्ध करने वाली है।[1] अतः हे पुत्रियों! तुम दोनों विद्या ग्रहण करने में प्रयत्न करो, क्योंकि विद्या ग्रहण करने का यही काल है।

इस प्रकार उपदेश देकर श्रुतदेवता को प्रणामपूर्वक स्वर्ण के विस्तृत पट्ट पर वर्णमाला को लिखकर ऋषभदेव ने अपनी कन्याओं को वर्णमाला की शिक्षा दी।[2] उन्होंने अपनी दोनों पुत्रियों ब्राह्मी एवं सुन्दरी को 72 कलाओं में निष्णात किया। माता-पिता को केवल कन्या के विवाह की ही चिन्ता नहीं रहती थी, अपितु वे उसे पूर्ण विदुषी और कला प्रवीण बनाते थे। यद्यपि कन्याओं की शिक्षा, पुत्रों की शिक्षा से भिन्न प्रकार की होती थी।

शिक्षा के पश्चात् विवाह के अवसर पर कन्याओं को स्वयं वर-वरण की स्वतन्त्रता प्राप्त थी। कन्याएँ वर भूमि में उपस्थित होकर स्वयं वर का चयन करती थीं। विवाह करना आवश्यक भी नहीं माना जाता था। कन्याएँ आजीवन अविवाहिता रहकर समाज सेवा करते हुए आत्मकल्याण करने के लिए भी स्वतंत्र थीं। जैसा कि ब्राह्मी, सुन्दरी ने किया। लेकिन कन्या का विवाह के पूर्व तक ही अपनी पैतृक सम्पत्ति पर अधिकार होता था। विवाह के पश्चात् वधू गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट होकर गृहिणी पद को प्राप्त करती थी। विवाहिता स्त्री अपने परिवार की सब प्रकार से व्यवस्था करती थी। गृहिणी गृहपति की सेवा-शुश्रूषा तो करती थी, साथ ही उसके कार्यों में भी सहयोग देती थी। उसे घूमने-फिरने की पूर्ण स्वतंत्रता थी। परिवार में धर्मात्मा और विदुषी गृहिणियों का अधिक सम्मान होता था। स्त्रियों का अपमान समाज में महान् अपराध माना जाता था। पति स्त्री के भरण-पोषण के साथ उसका संरक्षण भी करता था।

माता के रूप में नारी को सर्वाधिक सम्मान मिला है। उसे सन्तान के जन्म, पोषण, शिक्षा-दीक्षा का दायित्व सौंपा गया है। यह तो सर्वमान्य तथ्य है कि एक माता अपनी संतान के व्यक्तित्व-निर्माण में महती भूमिका अदा करती है। भगवान ऋषभदेव की माता मरुदेवी की स्तुति में कहा गया है, जो माता तीर्थंकर और चक्रवर्ती को जन्म देती है, उस माता के महत्त्व का मूल्यांकन कौन कर सकता है? गृहस्थावस्था में जिस जननी का तीर्थंकर ने पादवन्दन किया है, उसकी पवित्रता वचनातीत है। माता बनने के पूर्व गर्भवती स्त्री का विशेष ध्यान रखा जाता है तथा उसके दोहद को पूर्ण करना प्रत्येक पति का परम कर्तव्य होता है।[3]

प्राचीन काल से ई.पू. चौथी सदी तक समाज में नारी की उन्नत एवं सम्माननीय स्थिति थी। कालान्तर में उत्तरोत्तर सामाजिक परिवेश में परिवर्तन के साथ कुप्रथाएँ प्रचलित होती चली गयीं। रामायण-महाभारत काल में सती प्रथा के प्रचलन के उल्लेख मिलते हैं। धीरे-धीरे बहु विवाह एवं बाल-विवाह प्रचलन में आए। ईसा की 12वीं सदी के पश्चात् विदेशी आक्रमणकारियों से नारी लज्जा एवं सम्मान के रक्षार्थ पर्दा-प्रथा अथवा घूंघट-प्रथा

प्रचलन में आयी, जिसने कालान्तर में एक आवश्यक प्रथा का रूप धारण कर लिया। इससे पूर्व सहशिक्षा का वातावरण था। वधुओं को अभ्यागतों के समक्ष लाना सम्मानजनक माना जाता था।

समाज में विधवा नारियों की स्थिति कभी भी अधिक अच्छी नहीं रही। पुत्रवती स्त्रियां पुत्रों के संरक्षण में अपना जीवन व्यतीत करती थीं। सामान्यतया विधवा को अनाथ एवं बलहीन समझा जाता था। विधवाएं अपना जीवन व्रत, उपवास एवं धर्म-साधना में लगाकर आत्म-कल्याण में प्रवृत्त होकर व्यतीत करती थीं।

जैन धर्म ने नारी को पुरुषों के बराबर सम्मान एवं अधिकार दिए। भगवान् महावीर ने कैवल्य प्राप्ति के बाद जब गौतम को दीक्षित किया वहीं चन्दना को भी दीक्षित कर श्रमणी संघ की प्रवर्तिनी नियुक्त किया। श्रावकों के समान श्राविकाओं के लिए भी 12 व्रतों का विधान किया गया था।[4] पूर्व के अन्य तीर्थंकरों की तरह ही भगवान् महावीर ने भी चतुर्विध संघ की स्थापना की। उनके संघ में 14000 साधु, 36000 साध्वियां तथा 1,59,000 श्रावक एवं 3,18,000 श्राविकाएँ थीं।[5]

मात्र जैन धर्म एक ऐसा धर्म था जिसने नारी को सर्वोच्च स्थान प्रदान किया। उसे मोक्ष की अधिकारिणी माना। नारी भी तीर्थंकर पद को प्राप्त कर सकती है।[6] उदाहरणार्थ मल्ली कुमारी ने तीर्थंकर पद को प्राप्त किया था। अन्य तीर्थंकरों के समान ही मल्ली का चतुर्विध संघ था, जिसमें 28 गणधर, 40 हजार श्रमण, 55 हजार साध्वियां, 1 लाख 84 हजार श्रावक तथा 3 लाख 65 हजार श्राविकाएं थीं।[7]

जैन धर्म में जहां नारी को पुरुष के समान अधिकार दिए गए हैं वहीं अनेक उदाहरण ऐसे भी प्राप्त होते हैं जहाँ उसकी निन्दा भी की गई है और उसे मोक्षमार्ग में बाधक माना गया है। नारी को स्वभावतः चंचल, कपटी, क्रोधी और मायाचारिणी बताते हुए पुरुषों को उससे सावधान रहने का उपदेश दिया गया है। नारी-मोह से छुटकारा पाने पर ही व्यक्ति का कल्याण हो सकता है।[8]

जैन संस्कृति में नारी-निन्दा के इन प्रसंगों का सम्यक् दृष्टि से अवलोकन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि नारी की यह आलोचना लोकोत्तर दृष्टि से की गई है। श्रमणों के मोक्ष मार्ग पर चलने तथा आध्यात्मिक साधना में स्थिर रखने के लिए यह निन्दा है, साथ ही साध्वियों के लिए भी आध्यात्मिक साधना हेतु पुरुषों से दूर रहने का विधान है। अतः यह धर्म-साधना की मांग है कि स्त्री-पुरुष पृथक्-पृथक् रहें, तभी वे अपने को मोह-माया से बचा सकते हैं।

जैन धर्म में ऐसी अनेक सन्नारियां हुई हैं, जिन्होंने पुरुषों को धर्म में स्थिर किया। राजीमति ने रथनेमि को प्रतिबोधित करके अपने आचार में स्थिर किया था। इसी प्रकार सुलसा, सुभद्रा, जयन्ती, कुन्ती, द्रौपदी आदि अनेक विदुषी धर्मनिष्ठ जैन उपासिकाएँ हुईं जो आज भी नारी जाति के गौरव और गरिमा का प्रतीक बन कर समस्त नारी समाज की प्रेरणा-स्रोत बनी हुई हैं। जो नारी शील की रक्षा के लिए त्याग करती थीं, उसको देवता भी वन्दना करते थे।

इस प्रकार नारी को माता, उपासिका एवं साध्वी रूप में हमेशा पूजा गया है। लेकिन जहां पुरुष से नारी की तुलना हुई है वहां नारी को सदैव हीन ही रखा गया है चाहे वह धार्मिक क्षेत्र हो अथवा सामाजिक, फिर भी जैन धर्म में नारी को आध्यात्मिक क्षेत्र में जितने अधिकार दिए गए हैं, जितना सम्मान एवं महत्त्व दिया गया है उतना प्राचीन संस्कृति में अन्यत्र नहीं मिलता है। जैन धर्म में उसका साध्वी एवं श्राविका के रूप में महत्त्वपूर्ण स्थान है।

संदर्भः-

1. आदिपुराण, 16.98-101
2. वही- 16.103-104
3. वही- 15.137
4. भगवती सूत्र- 8.5.3
5. ज्ञाताधर्मकथांग- 1.8.39
6. ज्ञाताधर्मकथांग-8.186
7. ज्ञाताधर्मकथांग- 1.192
8. (1) दशवैकालिक टीका, अध्याय 2, पृ.117
   (2) उत्तराध्ययन-8.18-19
9. उत्तराध्ययन सूत्र, अध्याय 9 पृ.273 (सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल, जयपुर)

-202, वीर दुर्गादास नगर, पाली (राज.)

पैसा सब कुछ नहीं

श्री राजकुमार नवलखा

पैसा पदार्थ दे सकता है, लेकिन सुख नहीं,
पैसा मकान दे सकता है, लेकिन शांति नहीं,
पैसा पुस्तक खरीद सकता है, लेकिन दिमाग नहीं,
पैसा अच्छा बिस्तर दे सकता है, लेकिन नींद नहीं।

पैसा बढ़ते-बढ़ते दीमक न बन जाय, अतः शुभ कार्यों में खर्च होना आवश्यक है।

-नवलखा भवन, आदित्य मार्ग, गुलाब बाड़ी, रामपुरा बाजार, कोटा (राज.)

धारावाहिक

लगन की वेला (3)

आचार्य श्री उमेशमुनि जी 'अणु'

आचार्य-पुंगव

लगभग सात वर्ष पूर्व की बात है- दिवस का तृतीय प्रहर चल रहा था। चंडरश्मि भास्कर अपनी उष्ण किरणों से धरती के अन्तस्तल तक पहुँच रहा था। ताप बहुत अधिक था। पशु वृक्षों के तले आ रहे थे और पक्षी सघन वृक्षों की शीतल छायावाली डालियों को तलाश रहे थे। इसके विपरीत अधिकांश मनुष्य अपने-अपने कार्य में लगे हुए थे। फिर भी कहीं-कहीं जंगल में रहने वाले वृद्ध मानव, वृद्ध स्त्रियाँ और युवा पुरुष वृक्ष की शीतल छाया में सोये थे तो कहीं रस्सी बँटने आदि कार्यों में लगे हुए थे।

उस समय पाँच मुनिराज कुशस्थलपुर के मार्ग पर बढ़े जा रहे थे। बड़े मुनिराज थे- आचार्य -पुरन्दर श्री मुनिचन्द्रजी महाराज और प्रमुख पट्टशिष्य थे श्री धर्मप्रियजी मुनिराज। शेष तीन मुनिराज मुनिश्री धर्मप्रियजी के शिष्य थे। वे प्रातःकाल से कुशस्थलपुर की ओर प्रस्थान कर चुके थे, परन्तु वहाँ अभी तक नहीं पहुँच पाये, क्योंकि आचार्यप्रवर के शरीर में कुछ शिथिलता आ गयी थी।

आचार्यप्रवर श्री मुनिचन्द्रजी महाराज वयः प्राप्त स्थविर थे, परन्तु उनके बाल अभी भी काले और सघन थे। शरीर पर झुर्रियाँ नहीं पड़ी थीं। शरीर कसा हुआ दृढ़ लगता था। उनका गौर वर्ण था। दिव्य चमचमाता हुआ प्रशस्त ललाट था। मुखमुद्रा सौम्य थी। नयनों में ब्रह्मचर्य का तेज था। शरीर न अधिक स्थूल और न अधिक कृश, मध्यम ऊँचाई से युक्त था। उनका व्यक्तित्व इतना प्रभावशाली था कि उनका वृद्धत्व दब-सा गया था। कोई यह देख ही नहीं पाता था कि आचार्यश्री वृद्ध हैं और कल तक उनके शरीर में अपार स्फूर्ति लक्षित होती थी, यों आज भी शरीर विशेष अस्वस्थ प्रतीत नहीं हो रहा था, परन्तु आज गुरुदेव की गति अचानक ही मन्द हो गयी थी। उनकी आत्मशक्ति अमित थी। कल तक वे युवा मुनियों के समान गतिमान रहे थे। आज उनकी यह स्थिति थी कि कुछ कदम चलकर, उन्हें बैठ जाना पड़ता था। शरीर में कुछ रोग नहीं था। थकावट भी नहीं थी। फिर भी मुश्किल हो रहा था- चलना।

मुनिराज धर्मप्रियजी यह स्थिति जानते ही चिंतित हो उठे। उन्होंने पूछा- "गुरुदेव! यह क्या हो रहा है? आपको कैसा लग रहा है?" आचार्यदेव ने उन्हें आश्वस्त करते हुए

कहा- ''वत्स! मैं अस्वस्थ नहीं हूँ। बस, मुझसे चला नहीं जा रहा है। तुम आगे बढ़ो। एक मुनि को मेरे पास छोड़ दो। मैं धीरे-धीरे आ जाऊँगा।''

''गुरुदेव! कोई बात नहीं। ऐसी क्या जल्दी है? घड़ी-दो-घड़ी देर होगी।''

आचार्यश्री मौन हो गये। वे चलते, फिर विश्राम करते। मुनि धर्मप्रियजी उनके साथ थे। आचार्यदेव के भण्डोपकरण उन्होंने उठा रखे थे। अन्य साधु जब बोझ लेना चाहते, तब वे कहते- ''आयुष्मन्! तुमने मेरे अधिकांश भण्डोपकरण उठा लिये हैं। अब दुर्लभ लाभ मुझे मिला है-यह। अधिक लोभी मत बनो। कुछ लाभ मुझे लेने दो।''

इतनी देर तक आचार्यश्री बिना किसी सहारा लिये चलते रहे। परन्तु अब वे धर्मप्रियजी के कन्धे पर हाथ रखकर चलने लगे और मुस्कराकर बोले- ''अब मेरा भी बोझ उठाना पड़ रहा है, वत्स!'' यह वाक्य द्वि-अर्थी था, जिसमें उनके उत्तराधिकार को वहन करने का दूसरा अर्थ रहा हुआ था। वे आचार्यश्री के ज्येष्ठ शिष्य थे और ज्ञान तथा चारित्र सम्पन्न थे। वीतराग-आज्ञा में उनकी अटल निष्ठा थी। वे आचार्यश्री को संघ-व्यवस्था में और शासन-व्यवहार में सहयोग देते रहते थे। वे आचार्यश्री के भाव समझ गए। इसलिये वे सकुचाते हुए बोले- ''गुरुदेव! मैं इस योग्य कहाँ हूँ कि आपका भार वहन कर सकूँ। यह तो आपश्री की मुझ पर महती कृपा है'' यह कहते हुए उन्हें लगा कि आचार्यश्री बराबर चल नहीं पा रहे हैं। तब वे नीचे बैठते हुए बोले- ''गुरुदेव! आप बराबर चल नहीं पा रहे हैं। आप मेरे कँधों पर विराजिये। आपको जरा भी कष्ट न होने दूँगा।''

आचार्यश्री ने परिहास करते हुए कहा- ''वाह, भाई! वाह! तुम तो पूरा ही मुझे अपने अधीन करना चाहते हो। इतने उतावले मत बनो। मुझे थोड़ा स्वतन्त्र रहने दो।'' फिर आचार्यश्री ने स्वाभाविक रूप से कहा-''भाई! यह तो परिहास हुआ। तुम अपनी ओर भी तो देखो। तुम्हारा तपस्वी शरीर है। आज भी उपवास है। मुझे कन्धे पर उठाकर, कैसे चल सकोगे?''

मुनिजी ने दृढ़ता से कहा- ''गुरुदेव! विराजिये तो सही। मैं आपको उठा सकूँगा या नहीं, अभी पता चल जायेगा।'' उन्होंने गुरुदेव के दोनों चरण पकड़ लिये।

आचार्यदेव ने वात्सल्य से उनके पसीने से तर मस्तक पर हाथ फिराते हुए कहा- ''वत्स! ऐसा नहीं हो सकता। जहाँ तक मुझसे चला जाएगा, वहाँ तक मैं चलूँगा। कितने पसीने से तर हो गए तुम? तुम बहुत श्रमित हो गये हो, देवानुप्रिय! और ऐसी कोई बात नहीं है। सम्भव हुआ तो मैं धीरे-धीरे रास्ता पार कर ही लूँगा। तुम घबराओ मत।''

इतने में लघुमुनि सामने आये और बोले-''गुरुदेव! यह लाभ मुझे ही दीजिये।'' गुरुदेव उनकी बात सुनकर हँस पड़े। फिर बोले- ''आज यह अच्छी रही! आप मुझे बच्चे के समान

उठाना चाह रहे हैं, परन्तु मैं इतना हल्का फूल नहीं हूँ।''

लघुमुनि गुरुदेव के वात्सल्य से खिल उठे- ''गुरुजी! यह तो पता है, आप गुरु जो हैं और गुरु कब हलके होते हैं? जो हलके होते हैं, वे गुरु होते ही नहीं हैं।'' मुनिजी की बात सुनकर, गुरुदेव प्रसन्न हो गये। उन्होंने कहा- ''धर्मप्रियजी! अब तुम मुझसे दूर स्वतन्त्रता से चलो। अब मैं इसका सहारा लूँगा।''

''जो आज्ञा''- यह कहकर, धर्मप्रियजी अलग हट गए। लघुमुनिजी के कन्धे पर हाथ रखकर, गुरुदेव चलने लगे। अब गुरुदेव बैठते नहीं थे। थोड़ी देर रुककर पुनः चलने लग जाते थे। इतने में तीसरा प्रहर आ गया था।

गुरुदेव ने कहा- ''धर्मप्रियजी! मात्र दो घड़ी का ही नहीं, पूरे एक प्रहर का विलम्ब हो गया है। गर्मी भी बढ़ गयी है। अभी कुशस्थलपुर दूर है। इसलिये तुम दो साधुओं को लेकर, आगे बढ़ जाओ। मैं भी जल्दी ही आने का प्रयत्न करूँगा।''

धर्मप्रियजी दुःखी स्वर में बोले- ''गुरुदेव! ऐसी स्थिति में आपको अकेले एक साधु के भरोसे छोड़कर, कैसे जा सकता हूँ और हमें ऐसी क्या जल्दी है? तीन जने के उपवास है। सिर्फ आप और लघुमुनिजी को एकाशन है।''

''वत्स! आहार नहीं, पर पानी तो चाहिये ही।''

''गुरुदेव! आप दया के सागर हैं। हमें प्यास लग रही है- यह सही है। पर वह असह्य नहीं है। सम्भव है कि जब कुशस्थलपुर आधा गाऊ रह जाये, तब आपकी आज्ञा का पालन करूँ?''

''अच्छा, आयुष्मन्!''- आचार्यदेव ने कहा- ''मुझे कोई कष्ट नहीं है। फिर आप सब साथ हैं। फिर क्या चिन्ता?'' बीच वाले दोनों मुनियों ने समझा कि हम पहले भी अवसर चूक गये। यदि हम अभी लाभ नहीं लेंगे तो फिर लाभ मिलना कठिन है। वे बोले- ''गुरुदेव! अब सेवा का लाभ हमें मिले।''

आचार्यदेव ने लघुमुनिजी से कहा- ''देवानुप्रिय! तुमने सेवा का खूब लाभ लिया है। अब अपने गुरुभाइयों को लाभ लेने दो।'' गुरुदेव कुछ हँसे। गुरुदेव ने उनका कंधा छोड़ दिया, परन्तु मुनिजी ने अपने हाथ से गुरुदेव के हाथ को अपने कंधे पर पुनः रख लिया और बोले- ''गुरुदेव! इन्होंने तो मुझसे ज्यादा आपका सान्निध्य पाया है। मैं तो श्री चरणों में थोड़े ही समय से आया हूँ। फिर सेवा का अवसर तो आज ही मिला है।''

वे मुनि बोले- ''भले ही हम गुरुदेव के चरणों में तुमसे पहले आये हैं, परन्तु पूज्यपाद इतने स्वावलम्बी हैं कि कभी सेवा का लाभ ही नहीं मिला। यों तो तुम हमारे अनुज हो, परन्तु सेवा में तो तुम अग्रज ही रहे हो।''

"यह गुरुदेव की परम कृपा और मेरा सौभाग्य।"

"नहीं, भाई! तुम्हारी तत्परता। भाई! हम तो देखते ही रह गये और तुम एक झटके से गुरुदेव की सेवा में नियोजित हो गये। अब लोभी मत बनो। थोड़ी निर्जरा का लाभ हमें भी दो।"

"आओ, देवानुप्रिय!"- यह कहकर, आचार्यदेव ने हाथ बढ़ाये और वे दोनों मुनि उनके दोनों ओर आ गये। उनके कंधों का सहारा लेते हुए उन्होंने कहा- "तुम सब तो निर्जरा कर रहे हो, परन्तु मैं क्या कर रहा हूँ। "आप भी निर्जरा कर रहे हो, गुरुदेव!"

"सो कैसे?" "गुरुदेव! आप इच्छा से हमारी सेवा कहाँ ले रहे हैं केवल परवशता से किंचित् मात्र अवलम्बन ले रहे हैं, वह भी निरपेक्ष भाव से। आप इस विवशता में भी कितने समभाव से भावित चित्तवाले हैं- कितने अप्रमत्त हैं? ऐसे अप्रमत्त आत्मा के कर्म-निर्जरा नहीं होगी तो क्या होगा?"

धर्मप्रिय मुनि यह दृश्य देखकर और वार्तालाप सुनकर, बड़े प्रसन्न हुए। ऐसा मधुर भव्य दृश्य और वात्सल्य तथा भक्ति से परिपूरित वार्तालाप उन्होंने कभी नहीं सुना था। आचार्यदेव का संघ विशाल था। आठ गणी साधु और आठ गणिनी साध्वियों के नेतृत्व में उनके सैकड़ों साधु-साध्वी विचरण कर रहे हैं। व्रतधारी हजारों उपासक- उपासिकाओं और लाखों श्रद्धालु श्रावक-श्राविकाओं का दल आचार्यश्री की आज्ञा पाने को उत्सुक रहता है। पर ऐसा कृपा-प्रसाद किसी को कहाँ मिला? उनका हृदय श्रद्धा से गद्‌गद् हो उठा।

आचार्यश्री ने प्रमोद भाव से कहा- "तुम बड़े पक्षपाती हो। तुम्हारे यहाँ से मुझे क्षणभर में प्रमाण-पत्र मिल गया, क्योंकि मैं तुम्हारे गुरु का गुरु हूँ न।" धूप में श्रमित होने पर भी आचार्यश्री मधुर-मधुर हँस रहे थे।

मुनि धर्मप्रियजी के नेत्र श्रद्धाश्रु से भर गये। वे अपने शिष्यों से बोले- "वत्सों! तुम बड़े भाग्यशाली हो। ऐसे भव्य क्षण तो हमें भी कभी नहीं मिले। तुम धन्य हो।"

लघुमुनिजी बोले- "क्यों न होंगे- हम धन्य! चार-चार आशीर्वाद के हाथ हम पर उठे हुए हैं।"

आचार्यश्री ने इधर-उधर देखा। उन्हें लगा कि अब कुशस्थलपुर ज्यादा दूर नहीं है। वे धर्मप्रियजी को सम्बोधन करके बोले- "वत्स, धर्मप्रियजी! अब नगर लगभग पौन गाऊ दूर होगा। तुम जल्दी नगर में पहुँचो। निर्दोष जल आदि की गवेषणा करनी होगी। इसमें कुछ समय लगेगा। अतः जल्दी करो। अब ननु-नच मत करो।"

"जो आज्ञा, गुरुदेव!"- धर्मप्रियजी ने अंजलि बाँधते हुए कहा-"अब कोई चिन्ता की बात नहीं है। मुझे बड़ी शान्ति है। आपकी गति में भी अब स्फूर्ति है।" फिर उन्होंने लघुमुनिजी से कहा- "नवीनजी! तुम मेरे साथ चलो। इन दोनों को गुरुदेव के साथ रहने

दो।'' उन दोनों ने आचार्यश्री को वन्दना की और वे रवाना हो गये।

मुनि धर्मप्रियजी ने नगर में प्रवेश किया। लोगों ने उन्हें देखते ही घेर लिया। उन्होंने उन्हें संक्षेप में जानकारी दी और वे उपाश्रय की ओर बढ़ गये। वे जल्दी ही उपाश्रय में पहुँचे और आज्ञा लेकर अपने भण्डोपकरण उतारे। फिर समीप के घरों में आहार-पानी की गवेषणा के लिये रवाना हुए। उन्हें अधिक परिश्रम नहीं करना पड़ा। अल्प समय में ही यथोचित निर्दोष आहार-पानी मिल गया। आचार्यश्री के आगमन के समाचार नगर में विद्युत् वेग से फैल गये।

आबाल वृद्ध नर-नारियों में उत्साह की लहर दौड़ गयी। नर-नारियों के वृन्द आचार्यश्री के सामने रवाना हुए। नगर-श्रेष्ठी सागरचन्द्रजी और सार्थवाह गुणसुन्दरजी मुनि धर्मप्रिय जी के पास पहुँचे। वंदना-नमस्कार करके कहा- ''भन्ते! बहुत देर हो गयी। कितनी दूर से पधार रहे हैं।'' ''यही छह गाऊ से। गुरुदेव की गति अचानक मंद हो जाने से इतना विलम्ब हो गया। अब गुरुदेव पधार ही रहे हैं। सम्भवतः गाँव के बाहर आ गये होंगे।''

वे दोनों गुरुदेव के सन्मुख पहुँचने के लिये रवाना हुए। उन्हें गुरुदेव के दर्शन नगर-द्वार पर हो गये। शाह समरादित्य, गाथापति संघदास, वृद्ध श्रावक (माहण) भवदत्त, उग्र महिषसेन, क्षत्रिय महीपाल आदि संघ के प्रमुख श्रावक और अन्य श्रावक-वृन्द आचार्य श्री की सेवा में पहले ही पहुँच चुके थे। श्राविकाओं की मंगल स्वागत-गीतिकाएँ गूँज रही थीं। गुरुदेव की जय-जयकार से तीर्थंकर भगवान के मंगल-स्मरण से और पूर्वज वृद्ध आचार्यों के गुणगान से वातावरण भव्य हो रहा था।

उग्र महिषसेन ने कहा- ''धन्य है, आचार्यदेव को। ऐसी वृद्धावस्था में भी कैसा जोर लगा रहे हैं। आज कितना कठोर विहार हुआ। इन कमल पुष्प से सुकुमार लघु मुनिराजों को मुख भी कैसा कुम्हला रहा है? धन्य है! धन्य है!

नगरश्रेष्ठी सागरचन्द्रजी ने भक्ति-भाव से कहा- ''हम पर धर्मदेव आचार्यदेव प्रभु ने बड़ी कृपा की। कई वर्षों में गुरुदेव का पदार्पण हुआ है। हम धन्य हो गये। आज हमारा नगर भी धन्य हो गया।''

गाथापति संघदास ने कहा- ''धन्य क्यों न होंगे भैया! हमारे गुरुदेवों का तपस्तेज तो देखो। तीन मुनिराजों के तो उपवास हैं और सभी मुनिराजों के अवड्ढ (तीन पौरुषी) के प्रत्याख्यान हो गये हैं। ऐसे तीव्र घाम में। परन्तु मुख पर ज़रा भी खिन्नता नहीं है।''

चतुर्थ प्रहर प्रारम्भ होते ही आचार्यदेव ने उपाश्रय में प्रवेश किया। उपाश्रय जय-जयकार से गूँज उठा। पूज्यवर और संतों ने गमनागमन का प्रतिक्रमण किया। फिर आचार्यदेव ने जन-समुदाय को मंगलपाठ सुनाया। जय-जयकार करता हुआ जन-वृन्द अपने-अपने घरों की ओर रवाना हुआ।

(क्रमशः)

कविता

जीवन-बोध क्षणिकाएँ

श्री यशवन्तमुनिजी

त्राटक

देह की ज्योति में
धीरे-धीरे मन्दता आती है,
कभी अचानक तो कभी क्रमशः
बुझ जाती है,
तुम चेतन हो शाश्वत ज्योत हो
जो कभी नहीं बुझती,
उसी शाश्वत ज्योत का कर त्राटक,
तूर्णमेव खुल जाएगा मुक्ति का
फाटक।

वन्दन

परमात्मा वीतराग देव वर्धमान को
मेरा कोटि-कोटि वन्दन,
मैं भी शीघ्र तोड़ूँ राग-द्वेष का बन्धन।

स्थितात्मा

हे साधक आत्मा! मत चाहो साता
इसी चाह से खुला है, खुल रहा है
कर्मों का खाता,
भगवान कहते हैं-
साता की चाहना पाप है,
अब तो समझो वीतराग-स्वभावमय
स्थितात्मा आप हैं।

अमृत

दुःख परकृत नहीं स्वकृत ही है,
यह सत्य अन्तर से स्वीकृत होते ही
इसी सोच से ज्ञानियों के
शोक-सन्ताप हुए मृत हैं,
फिर तो उनके चेतन को निज चेतन
का मिला पीने को अमृत है।

भवपार

मिथ्या भ्रम तम यही संसार है,
जिस भव्य के यह दूर हुआ
वह भव के उस पार है।

निर्विकल्पता

ज्ञानी सिर-नहीं धुनता, कर्म चुनता है,
ओढ़ने को संकल्प-विकल्प की नहीं
निर्विकल्पता की चादर बुनता है,
वह रहने को ईंट-पत्थर का नहीं
शाश्वत-मुकाम मुक्ति को चुनता है।

पथ्य

अध्यात्म कोई सपना नहीं,
कल्पना नहीं, और न ही
मन की उड़ान है,
यह तो धरातल पर चेतन के द्वारा
चेतन की पहचान है,
यह तो सत्य है, तथ्य है,
कर्मरोग को दूर करने का पथ्य है।

-संकलित

प्रभावी प्रसंग

बाहरी प्रकोप हुआ शांत

श्री जगदीश जैन

चौथ का बरवाड़ा से सवाईमाधोपुर के बीच डेकवा के निकट एक गाँव है 'मुई'। पूज्य आचार्यप्रवर गत वर्ष जब विहार कर डेकवा पधारे तो वहाँ से मुई के लिए विहार की भावना बनी। गाँव छोटा सा है किन्तु संतों की कृपा वहाँ भी समान रूप से बरसती है। 17 मार्च 2013 को डेकवा से कच्ची गडार, पक्की सड़क और बंधे की पाल की डगर से खेतों की मेड के बीच से गुजरते हुए घुमावदार रास्ते से जब आचार्यप्रवर ने संत मण्डली के साथ विहार किया तो दूरी 6-7 किलोमीटर की बजाय 9 किलोमीटर निकली। गाँव के जैन एवं जैनेतर भाइयों की श्रद्धा-भक्ति अनुपम थी। यहाँ लगभग 350 भाई-बहनों ने प्रवचन श्रवण का लाभ लिया। ग्रामवासियों ने व्यसन-त्याग का नियम स्वीकार कर स्वयं को धन्य बनाया।

इस मुई गाँव में स्थित विद्यालय में कोई बाहरी हवा का प्रकोप था, जिसके कारण, आए दिन बच्चे बेहोश हो जाया करते थे। अभिभावक अपने बच्चों को इस विद्यालय में भेजने से कतराते थे। कम ही बच्चे विद्यालय पहुँचते थे। इस प्रकोप की शांति के लिए अनेक उपाय किए गए, ग्रामवासी यज्ञ कराने की सोच रहे थे। ग्रामवासियों ने पूज्यआचार्यश्री के पदार्पण पर उनकी सेवा में इस व्यथा का निवेदन किया। पूज्य आचार्यप्रवर ने ध्यानस्थ होने के पश्चात् मौन भाव से पाठ सुनाया। दूसरे दिन 18 मार्च को पूज्यप्रवर विहार कर बगावदा पधार गए।

पूज्य आचार्यप्रवर के वहाँ से विहार करने के पश्चात् मार्च, अप्रेल एवं मई के अध्ययन काल में मुई के विद्यालय में किसी प्रकार की प्रकोप वाली घटना नहीं घटी। जुलाई मास भी शांति से व्यतीत हो गया। यह देखकर गाँव वालों का चिन्तन चला कि जैनियों के बड़े महाराज आये थे। हमने यहाँ की प्रकोप वाली स्थिति से अवगत कराया था। उन महाराज ने उसी समय ध्यान लगाकर आँखें बंद कर हमें मौन भाव से कुछ सुनाया था, उनके प्रभाव का यह प्रतिफल है कि हमारे बच्चे अभी सुरक्षित हैं तथा विद्यालय में खुशी-खुशी जाने लगे हैं। यह सब उन बाबा का ही चमत्कार लगता है।

अगस्त माह में मुई की सरपंच श्रीमती गुणमाला जैन, श्री गौतमचन्द जैन, श्री प्रेमराज मीणा, श्री जुम्मा खाँ, श्री रामस्वरूप जांगिड़, श्री देवराज मीणा पूज्य आचार्यप्रवर के दर्शन करने हेतु चातुर्मास काल में सवाईमाधोपुर पधारे तथा नतमस्तक होकर निवेदन किया कि विद्यालय में बाहरी हवा का जो प्रकोप था वह 17 मार्च 2013 को आपके पधारने के पश्चात् से शांत हो गया है। हम आपके आभारी हैं। *-हाउसिंग बोर्ड, सवाईमाधोपुर (राज.)*

स्वास्थ्य-विज्ञान

भोजन के अनुकूल दिनचर्या

डॉ. चंचलमल चोरडिया

प्रकृति के अनुकूल दिनचर्या आवश्यक

सूर्य प्रतिदिन प्रातःकाल उदय होकर सायंकाल ही क्यों अस्त होता है? निद्रा का समय प्रायः रात्रि में ही क्यों उपयुक्त होता है? प्रायः अधिकांश व्यक्ति मल-त्याग प्रातःकाल ही क्यों करते हैं? भ्रमण एवं श्वसन सम्बन्धी व्यायामों अथवा प्राणायाम प्रातः ही क्यों विशेष लाभप्रद होता है? जैन धर्म में रात्रि भोजन का क्यों निषेध किया गया है? समुद्र में ज्वार प्रतिदिन क्यों नहीं आते? विशेष तिथियों पर ही क्यों आते हैं? मौसम के अनुकूल खान-पान और रहन-सहन में परिवर्तन क्यों आवश्यक है? पुराने लोग स्वास्थ्यवर्धक आंवलों का विधिपूर्वक पूर्ण परहेज के साथ सेवन करने के लिये चैत्र और आसोज मास का ही क्यों परामर्श देते हैं? हमारी दिनचर्या एवं रात्रिचर्या के पीछे क्या दृष्टिकोण है? क्या इन सारी बातों का कोई वैज्ञानिक सोच या आधार है अथवा हमारी सुविधा या अन्धानुकरण मात्र है? प्रत्येक व्यक्ति के शरीर में एक जैविक घड़ी होती है, जो शरीर की क्रियाओं को नियन्त्रित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इसी कारण ठीक समय पर हमें निद्रा आती है, भूख लगती है, निद्रा खुल जाती है। **कोई बीज कितना ही अच्छा क्यों न हो, अच्छी उपजाऊ जमीन पर, उचित हवा, पानी, धूप होने के बावजूद उचित समय पर न बोने से नहीं उगता। ठीक उसी प्रकार भोजन, पानी, हवा, निद्रा आदि का बराबर खयाल रखने के बावजूद उचित समय पर उनका सेवन न करने से वे अपेक्षाकृत लाभदायक नहीं होते। राम का नाम सत्य है, परन्तु शुभ प्रसंगों पर 'राम नाम सत्य है' कहना अशुभ समझा जाता है।** अतः हमारी दिनचर्या का चयन इस प्रकार करना चाहिये कि शरीर के अंगों की क्षमताओं का अधिकतम उपयोग हो।

क्या शरीर में सभी अंग चौबीसों घण्टे सक्रिय होते हैं?

शरीर के सभी अंगों में प्राणऊर्जा का प्रवाह वैसे तो चौबीसों घंटे होता ही है, परन्तु सभी समय सभी अंगों में प्राणऊर्जा का प्रवाह एकसा नहीं होता। प्रायः प्रत्येक अंग कुछ निश्चित समय के लिये प्रकृति से अधिकतम प्राणऊर्जा मिलने से अधिक सक्रिय होते हैं तो, कभी प्रकृति से निम्नतम प्राणऊर्जा मिलने से अपेक्षाकृत कम सक्रिय होते हैं। इसी

कारण कोई भी रोगी चौबीसों घंटे एक जैसी स्थिति में नहीं रहता। अंगों में प्राणऊर्जा के प्रवाह का संतुलन ही स्वास्थ्य का सूचक होता है। यदि कोई रोग किसी अंग की असक्रियता से होता है तो, जिस समय उस अंग को प्रकृति से सर्वाधिक प्राणऊर्जा का प्रवाह होता है, तब रोगी को अपेक्षाकृत आंशिक राहत का अनुभव होता है। उसके विपरीत जब रोग उस अंग की अधिक सक्रियता से होता है तो जब उस अंग में प्राणऊर्जा का प्रवाह निम्नतम होता है, तब रोगी को अधिक राहत का अनुभव होता है। **कभी-कभी हम अनुभव करते हैं कि निश्चित समय होते ही रोगी में रोग के लक्षण प्रकट होने लग जाते हैं। ऐसा क्यों होता है? इसका कारण उस समय संबंधित अंग में प्राणऊर्जा का प्रवाह अधिकतम या निम्नतम होना है।**

वैज्ञानिक शोधों का यह निष्कर्ष है कि शरीर के सभी अंगों में सभी समय ब्रह्माण्ड से प्राणऊर्जा का एकसा प्रवाह नहीं होता। लगभग प्रत्येक अंग में दो-दो घंटे सर्वाधिक तो उसके ठीक विपरीत समय निम्नतम प्राणऊर्जा का प्रवाह उस अंग में होता है। इसी कारण एक ही लक्षण वाली बीमारियों के अलग-अलग समय में प्रकट होने के अलग-अलग कारण होते हैं। जैसे किसी व्यक्ति को प्रात:काल सिर दर्द होता है अथवा चक्कर आता है और किसी अन्य रोगी को दोपहर अथवा रात्रि में सिर दर्द अथवा चक्कर आता हो तो दोनों के अलग-अलग कारण होते हैं। रोग का कारण उससे संबंधित अंग में प्राणऊर्जा का प्रवाह अधिक अथवा कम होना होता है। इस प्रकार संबंधित रोगग्रस्त अंग का आसानी से सही निदान किया जा सकता है।

शारीरिक क्रियाओं का प्रकृति से तालमेल आवश्यक

मनुष्य की दिनचर्या में सभी बाह्य गतिविधियों का प्रारम्भ निद्रा त्याग से तथा समापन निद्रा आने के साथ होता है। स्वस्थ रहने की कामना रखने वालों के शरीर में कौनसा अंग और क्रियाएँ कब विशेष सक्रिय रहती हैं, इस बात की जानकारी आवश्यक होती है, और उसके अनुरूप आचरण करना चाहिये। हमें चिन्तन करना होगा कि कोई भी शारीरिक अथवा मानसिक क्रिया और कार्य क्यों करें? कितना करें? कहाँ करें? कैसे करें? इन सबके साथ-साथ यह भी आवश्यक है कि वह क्रिया कौन से समय करें? जैसे भोजन कब करें? निद्रा कब लें? पानी कब पीयें? व्यायाम कब करें इत्यादि? प्रकृति के अनुरूप दिनचर्या का निर्धारण और संचालन करने से शारीरिक क्षमताओं का अधिकाधिक उपयोग होता है। हम रोगों से सहज ही बच जाते हैं, यदि अज्ञानतावश रोग ग्रस्त हो भी जाएँ तो पुन: शीघ्र स्वस्थ बन सकते हैं।

दु:ख इस बात का है कि आज अधिकांश व्यक्तियों की दिनचर्या प्रकृति के अनुरूप

नहीं है और न वे इसके प्रभाव एवं महत्त्व को समझने का प्रयास करते हैं। अज्ञान, अविवेक, पूर्वाग्रहों, कुतर्कों, मायावी विज्ञापनों, सरकारी और सामाजिक व्यवस्थाओं के अन्धानुकरण के कारण प्रकृति के साथ जनसाधारण का सही सामंजस्य नहीं होता है। परिणाम स्वरूप भोजन के समय नाश्ता और निद्रा के समय जागृत रहने जैसी आदतों को संजोए हुए हैं। हम उनके दुष्प्रभावों से अपरिचित हैं।

हम यह भूल जाते हैं कि जिसमें प्रकृति के विरुद्ध चलने की ताकत न हो, वह कम से कम उसका सहयोग तो ले। तूफान का सामना करने की क्षमता न हो तो, कम से कम हवा की दिशा में तो चलें ताकि कम कठिनाई का अनुभव हो। **शरीर में जिस समय जो अंग सक्रिय हो, उस समय उस अंग से संबंधित कार्य एवं क्रियाएँ करें। दूसरी बात, जिस समय किसी अंग में प्रकृति से प्राणऊर्जा का प्रवाह सर्वाधिक हो, यदि उस समय दूसरे अंगों के कार्य और क्रियाएँ करेंगे तो संबंधित अंग प्रकृति से प्राप्त अपने हिस्से की विशेष प्राणऊर्जा (चेतना) से वंचित रह जाएगा। जैसे जलप्रदाय विभाग द्वारा पानी के वितरण के समय, जो पानी का संग्रह नहीं करेगा, उसको बाद में पानी की आवश्यकता पड़ने पर पछताना पड़ेगा।**

शरीर के प्रमुख अंगों में प्रकृति से सर्वाधिक एवं निम्नतम ऊर्जा के प्रवाह का समय

अंगों का नाम	अंग में प्राणऊर्जा के सर्वाधिक प्रवाह का समय	प्राणऊर्जा के निम्नतम प्रवाह का समय
1. फेफड़े	प्रातः 3 से 5 बजे तक	दोपहर 3 से 5 बजे तक
2. बड़ी आंत	प्रातः 5 से 7 बजे तक	सायंकाल 5 से 7 बजे तक
3. आमाशय	प्रातः 7 से 9 बजे तक	सायंकाल 7 से 9 बजे तक
4. तिल्ली/पेनक्रियाज	प्रातः 9 से 11 बजे तक	रात्रि 9 से 11 बजे तक
5. हृदय	प्रातः 11 से 1 बजे तक	रात्रि 11 से 1 बजे तक
6. छोटी आंत	दोपहर 1 से 3 बजे तक	रात्रि 1 से 3 बजे तक
7. मूत्राशय	दोपहर 3 से 5 बजे तक	रात्रि 3 से 5 बजे तक
8. गुर्दे	सायंकाल 5 से 7 बजे तक	प्रातः 5 से 7 बजे तक
9. पेरीकार्डियन	रात्रि 7 से 9 बजे तक	प्रातः 7 से 9 बजे तक
10. त्रिअग्नि	रात्रि 9 से 11 बजे तक	दिन में 9 से 11 बजे तक
11. पित्ताशय	रात्रि 11 से 1 बजे तक	दोपहर 11 से 1 बजे तक

12. लीवर रात्रि 1 से 3 बजे तक दोपहर 1 से 3 बजे तक

उपर्युक्त तालिका दिन एवं रात को 12-12 घंटों तथा सूर्योदय प्रात: 6 बजे तथा सूर्यास्त सायंकाल 6 बजे का आधार मानकर बनाई गयी है। परन्तु जहाँ दिन-रात बराबर नहीं होते वहां पर उसके अनुरूप ऊर्जा प्रवाह के समय में आंशिक परिवर्तन होता है। यद्यपि क्रम तो वही रहता है, फिर भी उस स्थिति में उससे संबंधित आगे अथवा पीछे वाला अंग भी प्रभावित हो सकता है। अत: रोग का सही निदान करने के लिये संबंधित अंगों के लक्षणों के प्रभाव का भी ध्यान रखना आवश्यक होता है। तालिका को देखने से दूसरा तथ्य यह सामने आता है कि शरीर में एक ही प्रकार की ऊर्जा का प्रवाह संबंधित यिन-यांग अंगों के जोड़े में 4 घंटे तक अपेक्षाकृत अधिक सक्रिय और ठीक 12 घंटे पश्चात् 4 घंटों तक उनमें प्रकृति से प्राणऊर्जा का प्रवाह निम्नतम होता है।

निद्रा कब त्यागें ?

प्रात: 3 बजे से 5 बजे तक फेफड़ों में प्राण ऊर्जा का प्रवाह सर्वाधिक होता है। इसी कारण प्रात: ब्रह्म मुहूर्त में उठकर खुली हवा में घूमने वाले, शुद्ध वायु में प्राणायाम तथा श्वसन का व्यायाम करने वालों के फेफड़े सशक्त होते हैं। परन्तु दमा के रोगी प्राण ऊर्जा के उस अतिरिक्त प्रवाह को ग्रहण न कर सकने के कारण पिछली रात अधिक परेशान और बेचैन रहते हैं। प्रात:काल 3 से 5 बजे पीयूष एवं पीनियल ग्रन्थियों से सोमरस निकलता है, जो शरीर की प्रतिकारात्मक शक्ति को बढ़ाता है तथा शरीर के व्यवस्थित विकास हेतु आवश्यक है। इस समय निद्रा लेने पर शारीरिक स्थिरता के कारण सोमरस की धारा गले के नीचे प्रवाहित नहीं हो पाती। इस रस के कारण उस समय मस्तिष्क की स्मरणशक्ति जितनी अच्छी होती है, अन्य समय नहीं होती। ब्रह्म मुहूर्त में उठने वाले छात्र अधिक बुद्धिमान, स्वस्थ, सजग एवं क्रियाशील होते हैं। उनमें आलस्य अपेक्षाकृत कम होता है।

प्रात: 5 से 7 बजे तक फेफड़ों के सहयोगी अंग बड़ी आंत में ऊर्जा का विशेष प्रवाह होने से यह अंग अधिक क्रियाशील होता है। इसी कारण मलत्याग के लिए यह सर्वोत्तम समय होता है। जो व्यक्ति उस समय मलत्याग नहीं करते हैं, उनके कब्ज़ रहने का एक कारण यह भी हो सकता है। इसलिये जो देर तक सोये रहते हैं, उनका पेट प्राय: खराब रहता है।

भोजन कब करें ?

जब स्वाभाविक अच्छी भूख लगे तब ही भोजन करना चाहिए। भूख का संबंध आदत पर निर्भर होता है। जैसी हम आदत डालते हैं, उस समय भूख लगने लग जाती है। अत: **भोजन की ऐसी आदत डालनी चाहिए कि जब आमाशय अधिक सक्रिय हो,**

उस समय तेज भूख लगे। दूसरी बात जब तेज भूख लगे तो कुछ खाकर आमाशय की पूर्ण क्षमता का अपव्यय नहीं करना चाहिये। यदि ऐसा किया गया तो मुख्य भोजन के समय आमाशय भी पाचन के प्रति उदासीन हो जाए तो आश्चर्य नहीं।

प्रात: 7 से 9 बजे तक आमाशय में प्रकृति से प्राणऊर्जा का सर्वाधिक प्रवाह होने तथा बड़ी आंत की सफाई हो जाने से इस समय पाचन आसानी से हो जाता है। आजकल उस समय अधिकांश व्यक्ति प्राय: भोजन नहीं करते, अपितु नाश्ते का प्रचलन बढ़ गया है। जितना अच्छा भोजन का पाचन प्रात:काल में होता है उतना अन्य समय में नहीं होता। प्रात: समय में व्यक्ति अपेक्षाकृत शान्त, तनाव मुक्त, षड्यंत्रों तथा उलझनों से मुक्त रहता है। अत: भोजन के समय में भी नियमितता रखी जा सकती है। ऐसे समय किया गया भोजन अधिक सुपाच्य होता है और अमृत का कार्य करता है। विशेष रूप से मधुमेह का रोग, जिसे असाध्य माना जाता है, प्रकृति के समयानुकूल भोजन कर ठीक किया जा सकता है।

नाश्ता अधूरा आहार है और जब हम आंशिक आहार का सेवन आमाशय की सर्वाधिक क्षमता के समय करते हैं तो जब हमारा मुख्य भोजन होता है, तब आमाशय की पाचन क्षमता इतनी अधिक न होने से उसे अधिक श्रम करना पड़ता है। दूसरी बात, प्रात:काल नाश्ता करने से हमें तेज भूख समय पर नहीं लगती। फलत: ऐसे व्यक्ति प्राय: दोपहर में भोजन करते हैं। आत्मार्थी साधु-संतों, ऋषि-मुनियों को तो एक समय ही आहार करना चाहिये। क्योंकि उनको कठोर शारीरिक श्रम की आवश्यकता नहीं होती। दूसरी बात, उन्हें गृहस्थों के घरों से मिला आहार लाकर अपनी उदर पूर्ति करनी पड़ती है। संयमित, नियमित, परिमित, स्वावलम्बी जीवन जीने के कारण ऐसे संतों का पाचनतंत्र प्राय: अच्छा होता है। अत: उनके लिये भोजन का समय दूसरा हो तो भी उतना अधिक हानिकारक नहीं होता। परन्तु जो एक समय से ज्यादा भोजन करते हैं, यदि प्राकृतिक नियमों का पालन नहीं करते हैं, तो रोगों के होने की संभावना रहती है। परन्तु गृहस्थ के लिये कम से कम दो भोजन की आवश्यकता होती है। अत: जब दोपहर देर से भोजन करते हैं तो उनका सायंकालीन भोजन प्राय: सूर्यास्त के बाद होता है। क्योंकि दो भोजन के बीच कम से कम 6 से 8 घंटे का अन्तराल आवश्यक होता है। परन्तु सूर्यास्त के पश्चात् किया गया भोजन स्वास्थ्य के लिये अहितकर होता है। अत: स्वास्थ्य प्रेमियों का प्रात:काल का भोजन आमाशय और पेन्क्रियाज समूह में जब प्राण ऊर्जा का प्रवाह प्रकृति से अधिक हो अवश्य कर लेना चाहिये।

आयुर्वेद के सिद्धान्तानुसार प्रात: 10 बजे तक का समय शरीर में कफ प्रकृति का होता है और दिन में 10 से 2 बजे तक का समय पित्त प्रकृति का होता है। अत: भोजन कफ

प्रकृति में कर लेने पर पित्त प्रकृति का समय होने से पाचन में मदद मिलती है। 10 बजे के पश्चात् शरीर में गर्मी बढ़ने के साथ-साथ बाह्य सूर्य की गर्मी भी बढ़ती है। प्राय: उस समय तक अधिकांश व्यक्तियों के निद्रा त्याग देने से शरीर में हलन-चलन भी होने लगती है। कफ प्रकृति में भोजन करने से भोजन के तुरन्त पश्चात् इतनी ज्यादा प्यास भी नहीं लगती, जिससे खाने के तुरंत पश्चात् पानी पीने से जो पाचन बिगड़ता है उससे हम सहज बच जाते हैं, भोजन के पश्चात् निद्रा भी नहीं आती है। भोजन के पश्चात् आलस्य या आराम खराब पाचन क्रिया के सूचक होते हैं। इस कारण प्रात: भोजन करने से पाचन सर्वोत्तम होता है और हम सैकड़ों पाचन संबंधी रोगों से सहज ही बच जाते हैं।

इसलिये तो कहा गया है कि- ''सुबह का खाना खुद खाओ, दोपहर का दूसरों को खिलाओ एवं रात्रि का दुश्मन को खिलाओ।''

अर्थात् प्रात: पूरा खाना खाओ, दोपहर में आवश्यकता हो तो हल्का पाच्य खाना खाओ और रात में भिखारी की भांति, कभी मिल जाये तो खा लो अन्यथा अपने आपको संयमित रखो। आज अधिकांश रोगों की जड़ पेट है। अत: अपने समस्त पूर्वाग्रहों को छोड़ भोजन करने के सही समय का महत्त्व समझना चाहिये।

प्रात: 9 से 11 बजे तक का समय तिल्ली और पेन्क्रियाज का सबसे अधिक सक्रियता का समय होता है। अत: प्रात: 9 से 11 बजे तक शरीर में पेन्क्रियाटिक रस और इन्सुलिन सबसे ज्यादा बनता है। इन रसों का पाचन में विशेष महत्त्व होता है। अत: जो मधुमेह अथवा अन्य किसी प्रकार के पाचन रोगों से ग्रस्त होते हैं, उनके भोजन करने के समय में परिवर्तन आवश्यक होता है। रात्रि 9 से 11 बजे प्रकृति से इन अंगों को सबसे कम प्राणऊर्जा मिलती है। ठीक उसी प्रकार सायंकाल 7 से 9 बजे तक आमाशय में निम्नतम प्राणऊर्जा का प्रवाह प्रकृति से होता है। आमाशय और पेन्क्रियाज को निम्नतम प्राणऊर्जा मिलने से पाचन क्रिया मंद पड़ जाती है। अत: पाचन संबंधी रोगियों को तो सूर्यास्त के पश्चात् भोजन नहीं करना चाहिए।

रात्रि भोजन क्यों हानिकारक ?

रात्रि भोजन न केवल आमाशय और पेन्क्रियाज में निम्नतम प्राणऊर्जा का प्रवाह होने के कारण हानिकारक होता है, अपितु निम्न अन्य कारणों से भी हानिकारक होता है।

कीटाणुओं का भोजन पर प्रभाव

सूर्यास्त के पश्चात् बहुत से सूक्ष्म जीव पैदा हो जाते हैं। सूर्य का प्रकाश इन कीटाणुओं को पैदा होने से रोकता है। सूर्य के ताप में अनेक विषैले कीटाणु निष्क्रिय बन जाते हैं, जो सूर्यास्त के बाद पुन: सक्रिय होने लगते हैं। प्राय: हम अनुभव करते हैं कि दिन

में 1000 वॉट के बल्ब के पास भी सूक्ष्म जीव नहीं आते, जबकि रात में थोड़ी सी रोशनी में भी बल्ब के आसपास मच्छर मंडराने लगते हैं। ये जीव आहार की गन्ध के कारण भोज्य पदार्थों की तरफ आकर्षित होते हैं। वहीं दूसरी ओर भोजन में भी अनेक सूक्ष्म बेक्टीरिया उत्पन्न हो जाते हैं। इनका रंग भोजन के रंग जैसा ही होने से कृत्रिम प्रकाश में हम इन्हें नहीं देख पाते हैं। कृत्रिम प्रकाश में उजाला तो है, परन्तु वह सूर्य की बराबरी नहीं कर सकता। पूर्ण शाकाहारियों के लिये यह भोजन निश्चित रूप से त्याज्य होता है। रात्रि में तमस (अँधेरे) के कारण वैसे भी भोजन तामसिक बन जाता है। रात्रि भोजन से स्मरण शक्ति कमजोर होने लगती है। व्यक्ति अपनी क्षमताओं को पूर्ण रूपेण विकसित नहीं कर पाता।

रात्रि-भोजन और निद्रा

भोजन और शयन के बीच कम से कम चार घंटे का अन्तर आवश्यक होता है। सोने के समय तक भोजन का पूरा पाचन न हों तो भोजन का वह अंश आमाशय में ही पड़ा रहता है और पाचन संबंधी अनेक रोगों को पैदा करने का कारण बनता है। अंग्रेजी में एक कहावत है- **Early to Bed & Early to rise is the way to be Healthy, Wealthy & Wise** अर्थात् जल्दी सोने तथा जल्दी उठने से व्यक्ति स्वस्थ, सम्पन्न, समृद्धिशाली और बुद्धिमान होता है। इस दृष्टि से भी जब व्यक्ति देर से भोजन करेगा तो सोएगा भी देर से और देर से उठेगा। आज मधुमेह (डायबीटिज) जैसे अनेक रोगों की उत्पत्ति में रात्रि -भोजन भी एक मुख्य कारण होता है।

सूर्य के ताप का शरीर पर प्रभाव

प्रायः मच्छर रात्रि में क्यों अधिक काटते हैं ? क्या कभी हमने चिन्तन किया ? सूर्यास्त होने के पश्चात् शरीर की प्रतिरोधक शक्ति कम हो जाती है। ऊर्जा शक्ति की हानि होने से रात्रि में किया गया भोजन कैसे शक्तिवर्धक हो सकता है ?

सूर्य की रोशनी से शरीर में रोग-प्रतिकारक शक्ति बढ़ती है। इसी कारण प्राय: अधिकांश रोगों का प्रकोप रात में बढ़ने लगता है। प्रत्येक बीमारी भी अपेक्षाकृत रात में ज्यादा कष्टदायक होती है। इसका मुख्य कारण रात में सूर्य की गर्मी का अभाव होता है।

जिस प्रकार चूल्हे पर रखी हुई वस्तु को जब अग्नि की गर्मी मिलती है तभी वह पकती है, उसी प्रकार हमारे आमाशय में हम जो डालते हैं वह भी पेट की उष्णता (जठराग्नि) के कारण ही पचता है। इसी कारण जिसकी जठराग्नि प्रदीप्त होती है उसकी पाचन शक्ति अच्छी मानी जाती है। भोजन में शक्ति का माप केलोरीज की उष्णता पर आधारित होता है। पेट में नाभि को कमल की उपमा दी गई है। कमल को भारतीय संस्कृति में निष्कामता, निर्मलता और निर्लिप्तता का प्रतीक कहा गया है। कमल और सूर्य का सम्बन्ध लोक

विख्यात है। कमल सूर्योदय के साथ खिलते हैं और सूर्यास्त के साथ उनकी सक्रियता में अन्तर आ जाता है। विशेष रूप से नाभि कमल का पाचन में महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। सूर्यास्त के पश्चात् इसके सक्रिय न होने से रात्रि भोजन का पाचन बराबर नहीं होता।

दिन में प्राण वायु की अधिकता

सूर्य के प्रकाश में वृक्ष एवं पेड़ पौधे ऑक्सीजन रूपी प्राणवायु छोड़ते हैं। अत: वायु मण्डल में रात्रि की अपेक्षा दिन में ऑक्सीजन की मात्रा अपेक्षाकृत अधिक रहती है। इससे पाचन सरलता से होता है। इसके विपरीत रात में वृक्ष ऑक्सीजन ग्रहण कर स्वास्थ्य के लिये हानिकारक कार्बन डाई आक्साइड छोड़ते हैं। ऐसे वातावरण में श्वास लेने एवं भोजन से आरोग्य बिगड़ता है।

रात्रि भोजन एवं अध्यात्म

रात्रि भोजन में जो हिंसा होती है उसके कारण जप, तप और तीर्थयात्रा आदि सब व्यर्थ हो जाते हैं। पद्म पुराण-प्रभाव खंड में रात्रि भोजन को नरक का प्रथम द्वार बताया है। "चत्वारि नरकद्वारं, प्रथमं रात्रि भोजनम्"। चरक संहिता के अनुसार रात्रि भोजन दूषित और अम्लीभूत होने से बहुत क्षति पहुँचाता है।

मार्कण्डेय पुराण में तो सूर्यास्त के बाद अन्न को मांस और जल को रक्त जैसा हो जाने की बात बहुत स्पष्ट शब्दों में वर्णित हैं। जिसके भाव निम्न हैं- "अस्तंगते, दिवानाथे, आपो रुधिरमुच्यते। अन्नं मांससमं प्रोक्तं मार्कण्डेय महर्षिणा।" गीता के सतरहवें अध्ययन के दसवें श्लोक में कहा गया है- **यातनामं गतरसं पूर्ति पर्युषितं च यत्। उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम्।** अर्थात् रात में रखा या बनाया हुआ तथा नीरस, दुर्गन्धयुक्त तथा किसी जीव जन्तु के द्वारा स्पर्श किया हुआ और अपवित्र आहार तामस मनुष्यों को ही प्रिय होता है।

यजुर्वेद के अनुसार रात्रि भोजन को राक्षसों का भोजन बतलाया गया है। योगवशिष्ठ पूर्वार्ध श्लोक 108, योगशास्त्र, प्रकाश 2 आदि में भी रात्रि भोजन न करने का स्पष्ट निर्देश किया गया है। आत्म-पुराण अध्याय 33, श्लोक 43, स्कन्द पुराण- कपोल स्रोत-श्लोक 24 तथा स्कंध 7 अध्याय 11, श्लोक 235 में इसका स्पष्ट उल्लेख है।

जो बेटा मां-बाप की माला फेरे, प्रणाम करे, परन्तु उनकी आज्ञा का पालन न करे तो हम ऐसे पुत्र को क्या कहेंगे? उसी प्रकार हम धर्मग्रन्थों एवं विज्ञान की बातें करें और अप्राकृतिक जीवन पद्धति अपनाकर स्वस्थ रहना चाहें तो असंभव है।

पाश्चात्त्य अंधानुकरण के कारण रात्रि-भोजन की विवशता

रात्रि भोजन के लिंये एक ओर जहां हमारी असजगता एवं उससे पड़ने वाले दुष्प्रभावों

की जानकारी का अभाव जिम्मेदार होता है तो दूसरी ओर हमारी सामाजिक व सरकारी व्यवस्थाएँ भी उतनी ही जिम्मेदार होती हैं। सामूहिक भोजन का समय निर्धारित करते समय तथा कार्यालयों में भोजनावकाश का समय निर्धारित करते समय स्वास्थ्य के अनुकूल समय की पूर्ण उपेक्षा की गयी है। जैसी व्यवस्था होगी, उसी के अनुरूप जनसाधारण अपने आपको ढालता है। जब बच्चे प्रात:काल जल्दी पाठशाला जाएँगे और दोपहर बाद घर पहुंचेंगे तो पारिवारिक सदस्य समय पर कैसे भोजन कर सकते हैं? दो भोजन के बीच कम से कम 7-8 घंटों का अन्तर होना चाहिये। अत: जब सुबह खाना देर से खाएँगे तो रात का खाना स्वत: देरी से खाना पड़ेगा। क्योंकि बिना भूख खाना भी तो उचित नहीं।

दूसरी तरफ आज नाश्ते का प्रचलन बढ़ गया है, जो भोजन के सही समय हमारी भूख को समाप्त कर देता है। अत: जिन लोगों को समय पर खाने की अनुकूलता है, वे भी समय पर नहीं खाते।

तीसरी बात व्यक्ति का भोजन में जितना संयम रहना चाहिये उतना नहीं है। इसलिये जब चाहा, जो चाहा, जहाँ चाहा, जैसा चाहा पेट में डाल लेता है, जिससे सौर मण्डल की दृष्टि से पाचन के लिये जो सर्वश्रेष्ठ समय है उस समय उनको भूख ही नहीं लगती।

चौथी बात रात्रि भोजन को आधुनिकता का प्रतीक समझने की भूल हो रही है। सोते हुए को जगाया जा सकता है, परन्तु जो जागृत व्यक्ति निद्रा का बहाना कर सोये उसको जगाना बहुत मुश्किल है।

दिन में 11 से 1 बजे के बीच हृदय में विशेष प्राण ऊर्जा का प्रवाह होता है। हृदय हमारी संवेदनाओं, करुणा, दया एवं प्रेम का प्रतीक है। यदि उस समय हम भोजन करते हैं तो हमारी अधिकांश संवेदनाएँ भोजन के स्वाद की तरफ आकर्षित रहती हैं। अत: हृदय प्रकृति से मिलने वाली अपनी प्राणऊर्जा को पूर्णरुपेण ग्रहण नहीं कर सकता। 1 से 3 बजे तक छोटी आंत जो हृदय का पूरक अंग है और उसका अन्य कार्यो के साथ एक कार्य आमाशय से पचे हुये भोजन के अवशिष्टों को प्राप्त करना। अत: हृदय रोगियों को भी दोपहर 11 से 3 बजे के बीच भोजन, जहाँ तक संभव हो, त्यागना चाहिये। उस समय भोजन करने से हृदय एवं छोटी आंत अपनी प्राप्त ऊर्जाओं को पूर्ण क्षमताओं से ग्रहण नहीं कर पाते। हृदय तो होता है, किन्तु करुणा, दया एवं प्रेम का भाव समाप्त हो जाता है। बढ़ते हुए हृदय रोगों का एक प्रमुख कारण व्यक्ति की गलत दिनचर्या का चयन भी है। यदि हम संयममय जीवन जीयें, नियमित और परिमित एक समय ही भोजन करें तो, भोजन के समय में थोड़ा परिवर्तन हो सकता है, परन्तु जो न संयमित है, न जिनका आचरण नियमित और परिमित है, उनको स्वस्थ रहने के लिये तो इन नियमों का पालन करना ही चाहिये।

परन्तु आज हमारे लंच और डिनर रोगों के मंच बनते जा रहे हैं। अतः भोजन के उपयुक्त सर्वोत्तम समय की जानकारी जन साधारण तक पहुँचानी चाहिये। सारी सामाजिक एवं सरकारी व्यवस्थाओं को उसके अनुरूप बदलने की पहल करनी चाहिये।

दिनचर्या के निर्धारण में स्वास्थ्य की प्राथमिकता अनिवार्य

हमें हमारी जीवनचर्या में स्वास्थ्य के प्रतिकूल संस्कारों को बदलना होगा। प्रकृति के नियम व्यक्तिगत अनुकूलताओं के आधार पर नहीं बदलते। हमारी जीवन पद्धति के अनुरूप सूर्योदय और सूर्यास्त का समय निश्चित नहीं होता। बुद्धिमान वही है जो प्रकृति के अनुरूप अपने आपको ढाल लेता है।

नीति-निर्माताओं से अपेक्षा है कि रात्रि में सामूहिक भोजों का प्रचलन बंद करें। पाठशालाओं, कार्यालयों, कारखानों में स्वास्थ्य के अनुरूप भोजन के अनुकूल समय पर भोजनावकाश करने के निर्देश दें, पाठ्यक्रमों में बच्चों को रात्रि भोजन के दुष्प्रभावों की जानकारी दी जाए।

कहने का तात्पर्य यह है कि रात्रि-भोजन आरोग्य के साथ वैज्ञानिक, आध्यात्मिक, सामाजिक एवं पारिवारिक दृष्टिकोण से अनुपयोगी है, हानिकारक है, प्रकृति के विरुद्ध है। अत: स्वास्थ्य प्रेमियों के लिये त्याज्य है।

-चोरडिया भवन, जालोरी गेट के बाहर, जोधपुर-342003 (राज.)

फोन: 0291-2621454, 94141-34606

E-mail: cmchordia.jodhpur@gmail.com, Website: www.chordiahealthzone.in

स्वास्थ्य-आलेख प्रश्नोत्तर प्रतियोगिता

जिनवाणी के इस अंक में प्रकाशित 'स्वास्थ्य-विज्ञान' स्तम्भ के अन्तर्गत प्रकाशित उपर्युक्त आलेख पर कुछ प्रश्न दिए जा रहे हैं, आप इनका उत्तर **15 जून 2014** तक श्री चंचलमल जी चोरडिया के उपर्युक्त पते पर अपने फोन नं., ई-मेल एवं पते सहित सीधे प्रेषित कर सकते हैं। विलम्ब से प्राप्त उत्तरों को प्रतियोगिता में सम्मिलित नहीं किया जाएगा। इस प्रतियोगिता में किसी भी वय का व्यक्ति भाग ले सकता है। सर्वाधिक अंक प्राप्तकर्ताओं को प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय पुरस्कार के अन्तर्गत 1000/-, 750/- एवं 500/- की राशि प्रेषित की जाएगी।

प्रश्न:-

1. कोई भी रोगी प्राय: चौबीसों घंटे एक जैसी स्थिति में क्यों नहीं रहता?
2. विभिन्न अंगों में ऊर्जा प्रवाह से तालिका से रोग निदान में क्या मदद मिलती है?
3. प्रात: ब्रह्म मुहूर्त में क्यों उठना चाहिए?
4. भोजन कब नहीं करना चाहिए?

5. लंच और डिनर को रोगों का मंच क्यों कहते हैं?
6. "सुबह का खाना स्वयं खाओ, दोपहर का खाना दूसरों को खिलाओ, रात का खाना दुश्मनों को खिलाओ" इस बात से आप कितने सहमत हैं और क्यों?
7. रात्रि भोजन के सम्बन्ध में आध्यात्मिक दृष्टिकोण क्या है?

स्वास्थ्य-आलेख प्रश्नोत्तर प्रतियोगिता का परिणाम

जिनवाणी के मार्च-2014 के अंक में 'स्वास्थ्य-विज्ञान स्तम्भ' के अंतर्गत **'शारीरिक असंतुलनों के उपचार की सरल प्रभावशाली विधियाँ'** के प्रश्नों के उत्तर 45 प्रतियोगियों से प्राप्त हुए। सर्वाधिक अंक प्राप्त करने वाले प्रतियोगियों के नाम इस प्रकार हैं-

पुरस्कार एवं राशि-	**नाम**	
प्रथम पुरस्कार (1000/-रु.)	श्रीमती प्रीति पीपाड़ा-विजयनगर, अजमेर	(66.5/70)
द्वितीय पुरस्कार (750/-रु.)	श्रीमती मीनाक्षी दिनेश जैन-जोधपुर	(65.5/70)
तृतीय पुरस्कार (500/-रु.)	सुश्री हेमलता रमेश जी कोठारी-धुलिया	(65/70)

अन्य प्रतियोगी अपने अंक मालूम करना चाहें तो चंचलमल जी चोरड़िया-94141-34606 (मो.) से सम्पर्क कर सकते हैं। प्रतियोगी अपना नाम व पूरा पता उत्तरपुस्तिका एवं लिफाफे पर अवश्य लिखें। पता नहीं लिखे जाने पर उसे प्रतियोगिता में शामिल नहीं किया जाएगा।

कौन?

श्री पीरचन्द चोरडिया

1. अच्छा कौन?	सबसे गुण लेने वाला।
2. बुरा कौन?	दूसरों के दोष देखने वाला।
3. अंधा कौन?	अपने भविष्य को न देखने वाला।
4. बहरा कौन?	अच्छी बातें नहीं सुनने वाला।
5. वीर कौन?	धर्म पर अटल रहने वाला।
6. कायर कौन?	धर्म से डिगने वाला।
7. साहूकार कौन?	नीति से कमाई करने वाला।
8. बलवान कौन?	आत्म विश्वास रखने वाला।
9. नीरोग कौन?	भूख से कम खाने वाला।
10. रोगी कौन?	भूख से ज्यादा खाने वाला।

-माणक चौक, जोधपुर-342001 (राज.)

बाल-स्तम्भ

सिकन्दर की वसीयत

डॉ. सेवा नन्दवाल

बाल-स्तम्भ के अन्तर्गत प्रकाशित इस रचना को पढ़कर अन्त में दिए गए प्रश्नों के उत्तर 20 वर्ष की आयु तक के पाठक 15 जून 2014 तक जिनवाणी संपादकीय कार्यालय, सामायिक-स्वाध्याय भवन, कुम्हार छात्रावास के सामने, प्लॉट नं. 2, नेहरु पार्क, जोधपुर-342003(राज.) के पते पर प्रेषित करें। उत्तर के साथ अपनी आयु तथा पूर्ण पते का भी उल्लेख करें। श्रेष्ठ उत्तरदाताओं को श्री महावीरचन्द जी बाफना, जोधपुर द्वारा अपनी धर्मपत्नी एवं श्रीमती अरुणा जी, श्री मनोजकुमार जी, श्री कमलेश कुमार जी बाफना की माताश्री स्व. श्रीमती मोहिनीदेवी जी बाफना की पुण्य-स्मृति में पुरस्कृत किया जा रहा है। पुरस्कारों की राशि इस प्रकार है- प्रथम पुरस्कार-500 रुपये, द्वितीय पुरस्कार-300 रुपये, तृतीय पुरस्कार- 200 रुपये तथा 150 रुपये के पाँच सान्त्वना पुरस्कार।

विश्व विजेता बनने का ख्वाब पूरा कर सिकंदर महान् खुशी-खुशी अपने वतन लौट रहा था। सफलता का दर्प उसके चेहरे पर जगमगा रहा था। वह चाहता था कि शीघ्रातिशीघ्र अपनी माँ के पास पहुँचे और जीता हुआ सम्पूर्ण साम्राज्य माँ के चरणों में समर्पित कर दे। यह उसका वादा था, उस माँ से, जिसे वह सर्वाधिक चाहता था।

यह संयोग था कि अपने वतन से महज दो दिन की दूरी पर अचानक वह बीमार पड़ गया। बीमारी भी ऐसी वैसी मामूली नहीं बल्कि प्राणलेवा। वह खुदा को याद कर याचना करने लगा कि कम से कम घर तक वह उसे स्वस्थ और सुरक्षित पहुँचा दे। उसे यकीन था कि माँ की गोद में पहुँचकर वह मौत को परास्त कर देगा या फिर कुछ दिनों की मोहलत मांग लेगा।

हताशा के पलों में उसे अपनी माँ की तमाम बातें याद आने लगीं। एक बार किसी ने पूछा था, ''तुम्हें माँ सर्वप्रिय क्यों है?'' वह प्रश्न पूछने वाले की बेहूदगी पर झल्ला पड़ा था। ''माँ सब प्रश्नों से परे है।'' भांवावेश में आकर सम्राट् ने जवाब दिया, ''माँ....माँ तुम में क्या नहीं है? यह बात है कि अगर तू ना होती तो इस संसार में मेरा क्या वजूद था?''

काफिले में मौजूद राजवैद्य भी जब चिकित्सा का प्रयास कर हार गया तो उसने घुटने टेकते हुए सेनापति को सच्चाई बता दी कि सिकंदर महान् का बचना अब नामुमकिन है। एक और अंतिम गहन परीक्षण के बाद राजवैद्य ने यह दुःखद समाचार दिया कि सिकंदर महान् अब कुछ ही घंटों के मेहमान हैं।

सेनापति वापस लौटे तो उनका मुँह लटका हुआ था। सिकंदर बोला- ''सेनापति! मैंने

राजवैद्य की सारी बातें सुन ली हैं। इतनी बेशुमार दौलत, इतने बड़े साम्राज्य की मिल्कियत भी मुझे चंद दिनों के लिए जीवित नहीं रख सकती। क्या फायदा ऐसी उपलब्धि से?''

सेनापति ने गर्दन झुकाते हुए कहा- ''सम्राट् निराश न हों, राजवैद्य ने अभी हथियार नहीं डाले हैं।'' सिकंदर मायूसीपूर्वक बोला- ''सेनापतिजी झूठी तसल्ली मत दीजिए।'' सेनापति के पास इसके आगे कहने को कुछ नहीं था। सिकंदर ने कहा- ''कम से कम मेरी दूसरी ख्वाईश पूरी कर दीजिए।'' सेनापति ने तत्परता से हाथ जोड़ते हुए पूछा- ''बताइए सम्राट्! अवश्य करूँगा।'' ''मेरी वसीयत लिखिए।'' सिकंदर ने आदेश दिया। कागज-कलम लेकर सेनापति तैयार हुआ, ''बताइए सम्राट्।''

यकायक सिकंदर आसमान की ऊँचाइयों को घूरने लगा। आकाश का सूनापन उसकी विशाल आँखों में उतरने लगा। सेनापति उसके बोलने का इंतजार करने लगा, ''क्या लिखूँ सम्राट्?''

''यही कि मरने के बाद मेरे दोनों हाथ कफन से बाहर रखे जाएँ।'' सिकंदर ने गंभीर वाणी में कहा। हतप्रभ सेनापति उसकी बात का गूढ़ अर्थ समझने की चेष्टा करने लगा। ''क्षमा करें सम्राट्! आपकी बात मेरी समझ में नहीं आई। आखिर इस ख्वाईश से आप क्या सिद्ध करना चाहते हैं?''

सिकंदर की आँखे डबडबा आईं, ''मेरा एक सपना था कि मैं विश्व विजेता बनूँ और दुनिया की तमाम दौलत मेरे कदमों में हो। मैंने अपना वह सपना तो किसी प्रकार हकीकत में बदल लिया, किंतु कमाई हुई संपत्ति का एक कणमात्र भी अपने साथ नहीं ले जा सकूँगा। सब कुछ यहीं रह जाएगा। अब मैं दुनियाँ को यही बताना चाहता हूँ कि धरती पर अकूत संपदा का मालिक सिकंदर जब इस दुनिया से विदा हुआ तो उसके दोनों हाथ खाली थे।''

यह लिखते हुए सेनापति की आँखे छलछला आईं। सिकंदर कह रहा था, ''यहाँ तक कि यह बेशुमार दौलत भी मुझे दो दिन और जीवित रखने में असमर्थ है। यह दो दिन मैं सिर्फ इसलिए चाहता था कि अपनी माँ के चरणों में सारा साम्राज्य समर्पित कर सकूँ और उसकी गोद में सुकून से प्राण त्याग सकूँ।'' *-'बालभारती/जून-2012' पत्रिका से संकलित*

साधनों की हर तरफ, बढ़ रही भरमार है

श्री मोहन कोठारी 'विनर'

साधनों की हर तरफ, बढ़ रही भरमार है,
आदमी का आदमी से, घट रहा लो प्यार है।

बेनूर होती जा रही है, आदमी की ज़िंदगी,
देखकर के यह शमा, मन बड़ा हैरान है।
साधनों की हर.....।।1।।

लो सिमटती जा रही है, आदमी की ज़िंदगी,
भाग दौड़ है बढ़ी, घटी प्रभु की बंदगी।
अपनेपन की भावना, अब कहीं दिखती नहीं,
विचारों में आ गई है, देखो अरे मलिनगी।
घट रहा रिश्तों का देखो, माधुर्य भरा व्यवहार है,
साधनों की हर.....।।2।।

दौर फैशन का चला है, आज चारों ओर है,
ब्राण्ड के दीवाने हैं, आया समय घनघोर है।
मान मर्यादाएँ देखो, है धूमिल होने लगीं,
देखकर हो जाती मन में, है बड़ी शर्मिन्दगी।
मानवता तो हो रही है, देखो शर्मसार है।
साधनों की हर.....।।3।।

सभ्यता और संस्कारों को, अरे ये छोड़कर,
वेस्टर्न कल्चर के पीछे, अपने युवा हैं पड़े।
दिग्भ्रमित है आज देखो, नवजवां इस देश का,
व्यसन के रास्तों में, हैं कदम इनके बढ़े।
संस्कारों को बचाने की, बड़ी दरकार है,
साधनों की हर.....।।4।।

साधनों को छोड़ करके, साधना प्रमुख रहे,
घर का एक बच्चा भी, न धर्म से विमुख रहे।
हर किसी सदस्य को, साधना प्रोत्साहन दो,
दे के नित्य प्रेरणा, भावना निखार दो।
धर्म की डगर चले, तो ज़िंदगी का सार है,
साधनों की हर.....।।5।।

-जनता साड़ी सेण्टर, स्टेशन रोड, दुर्ग-491001 (छतीसगढ़)

प्रश्नः-

1. सिकन्दर को सबसे प्रिय कौन था और क्यों?
2. सिकन्दर अपनी वसीयत से लोगों को क्या समझाना चाहते थे?
3. 'घुटना टेकना' - मुहावरे का वाक्य में प्रयोग कीजिये।
4. अर्थ बताइये- ख्वाब, वतन, नामुमकिन, मिल्कियत, तमाम, कफन, अकूत सम्पदा, बेशुमार, तसल्ली, वसीयत।
5. 'मरने के बाद दोनों हाथ कफन से बाहर रखे जाएँ।' वाक्य से क्या संदेश प्राप्त होता है?
6. आदमी की ज़िंदगी बेनूर होने का क्या अभिप्राय है?
7. मानवता शर्मसार कैसे हो रही है?
8. ज़िंदगी का सार किसमें है?

बाल-स्तम्भ [मार्च-2014] का परिणाम

जिनवाणी के मार्च-2014 के अंक में बाल-स्तम्भ के अंतर्गत 'मेंढ़क की चढ़ाई' रचना के प्रश्नों के उत्तर 31 बालक-बालिकाओं से प्राप्त हुए। पूर्णांक 30 हैं।

पुरस्कार एवं राशि	नाम	अंक
प्रथम पुरस्कार-500/-	लक्की कांकरिया-दौड्डबालापुर (कर्नाटक)	27
द्वितीय पुरस्कार-300/-	प्रणत धींग-चेन्नई (तमिलनाडु)	25
तृतीय पुरस्कार- 200/-	हर्ष कोठारी-जयपुर (राज.)	23
सान्त्वना पुरस्कार- 150/-	दीप्ति जैन-लाडपुरा, कोटा(राज.)	19.5
	पूजा बांठिया-जोधपुर (राज.)	19
	विशाल सिंघवी-जोधपुर (राज.)	19
	आयुषी आहूजा-जयपुर (राज.)	18
	दीपेश जैन-जयपुर (राज.)	18

मुक्तक

श्री अनिल कुमार जैन

चंदन में शीतलता, जल में निर्मलता देखी,
सागर में गंभीरता, पर्वत में अटलता देखी,
हर एक में कोई न कोई खासियत देखी,
लेकिन सारी खासियत हीरा गुरु आपमें देखी।।

-'सूरज सदन', म. नं. 7, सुमन भारती स्कूल के पास, गुलाबबाड़ी, लाडपुरा, कोटा-324006 (राज.)

कविता

मानव को महान् बनाये, वह धार्मिक पाठशाला है

श्री जितेन्द्र जैन 'प्रेक्षक'

संस्कारों से जीवन में जो, कर देती उजाला है।
मानव को महान् बनाये, वह धार्मिक पाठशाला है।।

अभिभावक आज व्यस्त हैं, निज उलझन सुलझाने में,
उनकी संतानें मस्त हैं, आधुनिक बन जाने में।
व्यस्त और मस्त का भावी-संकट, जिसने टाला है,
मानव को महान बनाये, वह धार्मिक पाठशाला है।।1।।

हर घर डूबा है बाढ़ में भाई, भौतिक संसाधन की,
ऐसे में किसी को कहाँ है फुर्सत, धर्म-आराधन की।
धर्म और संस्कारों का सबको, जो पिलाती प्याला है,
मानव को महान् बनाये, वह धार्मिक पाठशाला है।।2।।

विकृतियों और कुरीतियों में, उलझी दुनिया सारी,
चहुँ ओर सुनाई देती है, करुणामयी किलकारी।
जो विकृतियों-कुरीतियों का, करती मुँह काला है,
मानव को महान् बनाये, वह धार्मिक पाठशाला है।।3।।

व्यावहारिक-शिक्षा आज सिद्ध, हो रही संस्कार-विहीन,
फिर भी पालक और पाल्य हो रहे, इसमें ही तल्लीन।
संस्कार-युक्त शिक्षा जिसका, उद्देश्य निराला है,
मानव को महान् बनाये, वह धार्मिक पाठशाला है।।4।।

बच्चे धार्मिक बन जायें यही, उनकी रखवाली है,
छाई रह सकती परिवारो में, तब ही खुशहाली है।
दुःख और तनाव पर समता का, जो लगाती ताला है,
मानव को महान् बनाये, वह धार्मिक पाठशाला है।।5।।

सद्गुणों का हो संरक्षण, इनका संवर्द्धन हो,
अवगुण व हीनताओं का, शत-प्रतिशत मर्दन हो।

इस पावन लक्ष्य की बागडोर को, जिसने संभाला है,
मानव को महान् बनाये, वह धार्मिक पाठशाला है।।6।।

मुहूर्त्त तीस दिन भर के, आत्मा को भी एक दो,
सामायिक से आत्मा का, प्रतिदिन अभिषेक करो।
'प्रेक्षक' सिवाय न जिसके, कोई रखवाला है,
मानव को महान् बनाये, वह धार्मिक पाठशाला है।।7।।

-'वर्द्धमान', 153-ए, काशीपुरी, भीलवाड़ा-311001 (राज.)

तुमको लाखों प्रणाम

52 वें दीक्षा-दिवस पर

श्री उम्मेदमल जैन

श्री पण्डित मानचन्द्र जी स्वामी तुमको लाखों प्रणाम।
आत्मध्यानी तपसी ज्ञानी, तुमको लाखों प्रणाम।।
माघ बदी चौथम दिन आया, जोधपुर में आनन्द छाया।
जन्मे मानचन्द्र स्वामी, तुमको लाखों प्रणाम।।
अचलचन्दजी तात तिहारे, माँ छोटा के प्राण पियारे।
सेठिया कुल उजियारे, तुमको लाखों प्रणाम।।
बालक वय में शिक्षा धारी, फिर दुनिया से ममता मारी।
मोह ममता दी त्याग, तुमको लाखों प्रणाम।।
संवत् दो हजार अठारह आया, गुरु हस्ती ही मन में भाया।
गुरु आज्ञा स्वीकारी, तुमको लाखों प्रणाम।।
माता पिता जब आज्ञा दीनी तब गुरुवर से दीक्षा लीनी।
भर यौवन के मांय, तुमको लाखों प्रणाम।।
जो शान्त दान्त गंभीर हैं, सयंम पालन में शूर हैं।
सेवा में रहते लीन, तुमको लाखों प्रणाम।
जो उपाध्याय पद धारक हैं, चारित्र गुणों के पालक हैं
समता गुण के धारक, तुमको लाखों प्रणाम।
दीक्षा दिवस आपका आया, अर्ध शताब्दी दिवस मनाया।
जन-जन के मन भाया, तुमको लाखों प्रणाम।।
'उम्मेदमल' चरणों का चाकर, नैया पार करो प्रभु आकर।
गुरु ही तारण हारे, तुमको लाखों प्रणाम।।

-चौथ का बरवाड़ा, जिला-सवाईमाधोपुर (राज.)

<u>कृति की 2 प्रतियाँ अपेक्षित हैं</u>

नूतन साहित्य

डॉ. श्वेता जैन

सुप्रभात- दैनिक विचार दिग्दर्शिका (कलेण्डर), ***प्रकाशक***- सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल, दुकान नं. 182 के ऊपर, बापू बाजार, जयपुर-302003 (राज.) दूरभाष-0141-2575997, 2571163, फैक्स-2570753, Email-sgpmandal@ yahoo.in, ***पृष्ठ***-365+3, ***मूल्य***-50 रुपये मात्र, सन्-2013

आचार्य श्री हीराचन्द्र जी म.सा. के 51 वें दीक्षा-दिवस के शुभ अवसर पर सुन्दर चित्रों के साथ प्रतिदिन एक विचार सूक्ति से मण्डित कलेण्डर श्रावकों के कर कमलों में अर्पित किया गया है। इसमें आचार्य श्री हस्ती, आचार्य श्री हीरा एवं उपाध्याय श्री के चिन्तन सूत्रों को संकलित किया गया है। उनके प्रत्येक सूत्र दिवस को सुविचारों की सुवास से सुरभित कर देने वाले हैं। यथा- ''मन में संशय हो तो सेवा भी नहीं होती, सेवा के लिए मनुष्य का ग्रंथिहीन होना आवश्यक है। ये ग्रन्थियाँ ही भाव शुद्धि में बाधक हैं।'' ''कट्टरता काटने का काम करती है और दृढ़ता जोड़ने का'', ''भगवान से मांगना-मिथ्यात्व, भगवान को मानना-सम्यक्त्व, भगवान की मानना- चारित्र''। इस कलेण्डर का वैशिष्ट्य है कि इसमें पृथ्वी दिवस, पुस्तक दिवस आदि विशिष्ट दिवसों का उल्लेख है तथा प्रतिदिन का एक नियम भी दिया गया है एवं मध्य में जीवन बोध देने वाले पद्य भी योजित हैं।

ऋषि प्रवचन : सामायिक साधना के रहस्य- प्रवचनकार- उपाध्याय प्रवर श्री प्रवीणऋषि जी म.सा., ***सम्पादक***- डॉ. दिलीप धींग, ***प्रकाशक***-आनंदतीर्थ केन्द्रीय प्रतिष्ठान, नया नं.4 (पुराना नं. 38), ए.बी.एम. एवन्यू बोट क्लब रोड, आर.ए.पुरम्, चेन्नई-600028, फोन नं.-044-24320334, Email-anandtirth.3d@gmail.com, ***पृष्ठ***-112, ***मूल्य***-100 रुपये मात्र, सन्-2013

आचार्य श्री आनन्दऋषि जी म.सा. की दीक्षा अर्द्धशताब्दी वर्ष के उपलक्ष्य में प्रकाशित यह पुस्तक 'सामायिक' के बहुआयामी स्वरूप को प्रस्तुत करती है। प्रवचनकार मुनि श्री फरमाते हैं कि क्रिया की प्रतिक्रिया नहीं करना 'सामायिक' का पहला अर्थ है। सामायिक जीवन का परम रसायन है, जो देह और आत्मा दोनों को स्वस्थ रखता है। अतः सामायिक को मात्र धार्मिक क्रिया-काण्ड समझकर नहीं करना है, अपितु जीवन को परिशुद्ध बनाने की कला जानकर उसे साधना है। ऐसी प्रेरणा करने वाली यह पुस्तक सुनियोजित ढंग से बीस अध्यायों में सम्पादित की गई है, यथा- सामायिक का स्वरूप और प्रक्रिया, साधक का ध्येय, सम्यग्दृष्टि से सम्पन्न जीवन, श्रद्धा की सामायिक, सामायिक साधना व प्रयोग, प्रतिक्रिया विहीन साधना सामायिक आदि। सामायिक के पाठों के अर्थ गाम्भीर्य को प्रस्तुत करने का इसमें स्तुत्य प्रयास किया गया है।

समाचार-विविधा

विचरण-विहार एवं विहार दिशाएँ : एक नज़र में

(30 अप्रेल, 2014)

- जिनशासन-गौरव परमश्रद्धेय आचार्यप्रवर पूज्य श्री 1008 श्री हीराचन्द्र जी म.सा. आदि ठाणा 7 देई (जिला-बून्दी) में विराज रहे हैं।
- परमश्रद्धेय उपाध्यायप्रवर पंडितरत्न श्री मानचन्द्र जी म.सा. आदि ठाणा 5 सामायिक-स्वाध्याय भवन, नेहरूपार्क, जोधपुर में विराज रहे हैं।
- तत्त्वचिन्तक श्रद्धेय श्री प्रमोदमुनि जी म.सा. आदि ठाणा 5 पंचशील कॉलोनी, जयपुर में विराज रहे हैं।
- साध्वीप्रमुखा शासनप्रभाविका महासती श्री मैनासुन्दरी जी म.सा.आदि ठाणा 11 सामायिक-स्वाध्याय भवन, पावटा-जोधपुर में विराज रहे हैं।
- व्याख्यात्री महासती श्री तेजकंवर जी म.सा. आदि ठाणा 10 ढाबरियाजी की फैक्ट्री में विराज रहे हैं, अजमेर की ओर विहार संभावित है।
- विदुषी महासती श्री सुशीलाकंवर जी म.सा. आदि ठाणा 5 देई (जिला-बून्दी) में विराज रहे हैं।
- विदुषी महासती श्री सौभाग्यवती जी म.सा. आदि ठाणा 5 मालवीय नगर स्थानक, जयपुर में विराज रहे हैं।
- व्याख्यात्री महासती श्री मनोहरकंवर जी म.सा. आदि ठाणा 3 भोपालगढ़ में विराज रहे हैं।
- व्याख्यात्री महासती श्री सोहनकंवर जी म.सा. आदि ठाणा 7, 107-मौजी कॉलोनी, मालवीय नगर, जयपुर में विराज रहे हैं।
- व्याख्यात्री महासती श्री सरलेशप्रभा जी म.सा. आदि ठाणा 3 देई (जिला-बून्दी) में विराज रहे हैं।
- व्याख्यात्री महासती श्री चन्द्रकला जी म.सा. आदि ठाणा केसरी भवन, नेहरूपार्क, जोधपुर में विराज रहे हैं।
- व्याख्यात्री महासती श्री इन्दुबाला जी म.सा. आदि ठाणा 5 का नाकोड़ा से विहार कर सांचोर की ओर विहार संभावित है।
- व्याख्यात्री महासती श्री ज्ञानलता जी म.सा. आदि ठाणा 6 मैसूर में विराज रहे हैं।

- व्याख्यात्री महासती श्री चारित्रलताजी म.सा. आदि ठाणा 4 रायचूर में विराज रहे हैं।
- व्याख्यात्री महासती श्री निःशल्यवती जी म.सा. आदि ठाणा 5 पूना विराज रहे हैं।
- व्याख्यात्री महासती श्री मुक्तिप्रभा जी म.सा. आदि ठाणा 4 आनन्दपुरी, कानपुर में विराज रहे हैं।
- व्याख्यात्री महासती श्री सुमतिप्रभा जी म.सा. आदि ठाणा 4 का सिणधरी से सांचोर की ओर विहार संभावित है।
- सेवाभावी महासती श्री विमलेशप्रभा जी म.सा. आदि ठाणा 5, महावीर कॉलोनी, अजमेर में विराज रहे हैं।
- व्याख्यात्री महासती श्री रुचिता जी म.सा. आदि ठाणा 5 देई (जिला-बून्दी) में विराज रहे हैं।
- व्याखयात्री महासती श्री निष्ठाप्रभा जी म.सा. आदि ठाणा 3 का सिन्धनूर से रायचूर की ओर विहार संभावित है।

आचार्यप्रवर के प्रति बढ़ता श्रद्धाभाव
जरखोदा में महावीर जयन्ती पर्व सोत्साह सम्पन्न
देई में अक्षयतृतीया पर्व हेतु पदार्पण

जिनशासन गौरव, आगम-महोदधि, प्रशान्त-प्रतिभा-विभूति, जन-जन की आस्था के केन्द्र, प्रवचनप्रभाकर, व्यसनमुक्ति, सामायिक-स्वाध्याय तथा रात्रिभोजन त्याग के प्रभावी प्रेरक परमाराध्य **परमश्रद्धेय आचार्यप्रवर पूज्य श्री हीराचन्द्र जी म.सा., महान् अध्यवसायी श्रद्धेय श्री महेन्द्रमुनिजी म.सा. आदि ठाणा** 7 के पावन सान्निध्य में 16 मार्च को फाल्गुनी चौमासी एवं चैत्रकृष्णा अष्टमी 24 मार्च 2014 को आचार्यप्रवर हीरा का 76 वां जन्मदिवस 1000 एकाशन तप के साथ मनाने का सौभाग्य सुमेरगंज मण्डी के समाज को प्राप्त हुआ। यहाँ से विहार कर पूज्यप्रवर 25 मार्च को इन्द्रगढ़ पधारे। इन्द्रगढ़ को प्रवचनामृतों से लाभान्वित कर पूज्यप्रवर 28 मार्च की शाम ढाई किमी. का विहार कर इन्द्रगढ़ माताजी पधारे। यहाँ नस में खिंचाव होने के कारण विहार कठिनाई से हुआ। पूज्यश्री संत-मण्डली के साथ 29 मार्च को करवर पधारे, जहाँ अग्रवाल जैन भाइयों ने अच्छी श्रद्धाभक्ति का परिचय दिया। 30 मार्च को केथूदा, 31 मार्च को सूँसा, 01 अप्रेल को झुण्डवा तथा 2 अप्रेल को खातोली प्लाण्ट पधारे। इसी दिन चेन्नई से चामराजपेट संघ अपनी भावभरी विनति लेकर गुरु चरणों में उपस्थित हुआ तथा जोधपुर शक्तिनगर के संघ-सदस्य परम श्रद्धेय उपाध्यायप्रवर श्री मानचन्द्र जी म.सा. आदि ठाणा के चातुर्मास की विनति लेकर उपस्थित हुए। जब प्रातः विहार का क्रम चल रहा था तब

मार्ग में श्रमण संघ के उपाध्याय श्री मूलमुनिजी म.सा. आदि ठाणा का मधुर मिलन हुआ। परस्पर में सुखशांति की पावन पृच्छा की गई। उपाध्यायप्रवर ने सहज भावों से निवेदन किया-''आपरी माहिती मौंहि आनन्द छे।''

उनियारा कस्बे की विगत वर्ष से फरसने की विनति चल रही थी। समयाभाव में अलीगढ़-रामपुरा से मात्र 10 किमी. की दूरी पर स्थित होने के बावजूद पूज्य श्री नहीं पधार पाये थे। उनियारा संघ कुस्तला में भी पर्वलाभ हेतु विनति कर चुका था। अतः संघ की भावना को ध्यान में रखकर 35 किमी का अतिरिक्त चक्कर लगाकर 3 अप्रेल को उनियारा पधारे एवं 3 दिन विराजकर प्रवचनामृत से लाभान्वित कर 5 अप्रेल को सायं विहार कर उणियारा के बाहर स्थित विद्यालय के बरामदे में मकोड़े की बहुलता वाले स्थल में रात्रि-साधना कर 6 अप्रेल को खातोली पधारे। पूर्व में खातोली गाँव ऋद्धि सम्पन्न पोरवाल बन्धुओं के सामाजिक कार्यों के कारण से ख्यातमान था। इस दिन यहाँ जोधपुर से नेहरूपार्क के संघ-सदस्य परमश्रद्धेय उपाध्यायप्रवर के चातुर्मास की विनति लेकर उपस्थित हुए। 7-8 अप्रेल को पूज्यश्री समीधी विराजे। यहाँ होलनांथा से सेठिया परिवार सेवा के लक्ष्य से आया। समीधी के भारती विद्यालय के संचालक श्री रईसखान पूज्य गुरु भगवन्त के दर्शन से ऐसे प्रभावित हुए कि उन्होंने जरखोदा तक प्रतिदिन दर्शन लाभ का क्रम बनाये रखा। 9 अप्रेल को बालापुर में पाली का संघ संत-सतीवृंद के चातुर्मास की विनति लेकर उपस्थित हुआ। खानपुर, जिला-झालावाड़ से पूर्व विधायक श्री अनिलकुमार जी जैन परिवार वालों के साथ दर्शन की व सेवा की भावना से पावन श्री चरणों में उपस्थित हुए। यहाँ से पूज्यश्री 10 अप्रेल को नाहरगंज पधारे। यहाँ फतेहगंज के भाई गाँव में पधारने की विनति लेकर उपस्थित हुए। नैनवां नगरपालिका की पूर्व चेयरमेन श्रीमती रूक्मिणी जी नागर व गाँव के सरपंच साहब आदि ने सेवा-सन्निधि व आतिथ्य-सत्कार भावना का लाभ लिया।

11 अप्रेल को पूज्य आचार्य भगवंत का जरखोदा की धरा पर श्रावक-श्राविकावृन्द द्वारा कृत जयघोष के साथ सोत्साह पावन पदार्पण हुआ। 12 अप्रेल को भोपालगढ़ संघ के सदस्यगण जो दक्षिण प्रवासी हैं, पूज्य आचार्य भगवंत के सन् 2015 के आगामी चातुर्मास की विनति लेकर पावन श्री चरणों में समुपस्थित हुए।

13 अप्रेल को भगवान महावीर का 2613 वाँ जन्म-कल्याणक सामूहिक एकाशन की साधना व 1200 के लगभग की उपस्थिति में सामायिक साधना व तप-त्याग के साथ मनाया गया। श्रद्धेय श्री योगेशमुनिजी ने महावीर के जीवन-दर्शन पर प्रकाश डालते हुए फरमाया कि प्रभु महावीर की मानने से महाविनाश रुक सकता है। महावीर वाणी कह रही है कि चित्र की पूजा नहीं करके चारित्र की पूजा करें। हम वचन वीर बनकर ही नहीं रहें,

आचरण वीर बनकर कथनी के अनुसार करणी करें। व्याख्यात्री महासती श्री रुचिताजी म.सा. ने फरमाया कि आज महावीर की वाणी को हृदयंगम करने की आवश्यकता है। व्याख्यात्री महासती श्री सरलेशप्रभा जी म.सा. ने फरमाया कि इमारत बनाना सरल है, किन्तु जीवन बनाना कठिन है। गुणों का वर्णन करना सरल है, किन्तु ग्रहण करना कठिन है। प्रभु के कष्टों का, तपस्या का, ध्यान का जितना प्रसंग आता है, उसका हम थोड़ा भी आचरण नहीं कर पा रहे हैं। महावीर ने पहले आचरण किया, फिर उपदेश दिया। हम साधना के सूत्र लेकर जाएँ। महान् अध्यवसायी श्री महेन्द्रमुनिजी म.सा. ने फरमाया कि चण्डकौशिक से डसे जाने पर भी प्रभु महावीर ने उसे बोधि प्राप्त करने की प्रेरणा की। संगम के द्वारा प्रदत्त कष्टों से वे नहीं घबराए। आज जड़ की उपासना छोड़कर चेतन की उपासना करने का लक्ष्य बनाएँ। अनेक स्थानों से श्रावक-श्राविका तथा संघ विनति लेकर उपस्थित हुए। पूज्य गुरुदेव ने परम श्रद्धेय उपाध्यायप्रवर, तत्त्वचिंतक मुनि श्री, साध्वीप्रमुखा आदि के चातुर्मास की स्वीकृति फरमाई। करौली व सरस्वती नगर-जोधपुर संघ भी विनति लेकर उपस्थित हुआ। 17 अप्रेल को श्री गौतमचंद जी संकलेचा कुम्भकोणम पूज्य गुरुदेव की सेवा में मांगलिक श्रवण करने परिवारजनों के साथ पधारे।

21 अप्रेल को यहाँ से विहार कर पूज्यप्रवर बावड़ी पधारे। यहाँ मुम्बई में स्वर्गस्थ हुए श्री राजेन्द्र जी भण्डारी की धर्मसहायिका श्रीमती देवबाला जी भण्डारी, उनके भ्राता एवं परिजन मांगलिक श्रवण की भावना से गुरु भगवन्त के सेवा में पधारे। 22 अप्रेल को आचार्यप्रवर बंसोली पधारे। यहां के मूल निवासी श्री लादूलाल जी सेन अध्यापक अच्छी धार्मिक प्रवृत्ति वाले हैं। वे गोरक्षा एवं व्यसनमुक्ति के प्रचारक हैं। आचार्यदेव से वे अत्यन्त प्रभावित हुए तथा देई में भी प्रतिदिन दर्शन-वन्दन का लाभ ले रहे हैं।

23 अप्रेल को पूज्य गुरुदेव का देई की धरा पर प्रमोदजन्य उपस्थिति में अतीव उल्लास व प्रमोद के साथ मंगलमय पदार्पण हुआ। देई संघ का हर सदस्य प्रवास समय का पूरा-पूरा उपयोग कर धन्यता का अनुभव कर रहा है। अक्षय तृतीया का पावन प्रसंग समुपस्थित होने वाला है। देई संघ की आत्मीयता व अपनत्व की भावना देखते ही बनती है। वे आगतों की पलक पावड़े बिछाकर आतिथ्य-सेवा का लाभ ले रहे हैं। देई संघ सौभाग्यशाली है। यहाँ चतुर्विध संघ का समवसरण लगा हुआ है।

इन दिनों चित्तौड़गढ़, विरार, हरसाना, हिण्डौन, होलनांथा, जयपुर, चेन्नई, बैंगलोर, जोधपुर, इन्दौर, मुम्बई, पाली, कोटा, झालावाड़, ब्यावर, विजयनगर, कुम्भकोणम्, जलगाँव, सूरत, औरंगाबाद, नवसारी, मेड़तासिटी, नाशिक आदि स्थानों से श्रावक-श्राविकाओं का शुभागमन हुआ है।

पूज्य उपाध्यायप्रवर के पदार्पण से जोधपुर के उपनगर हुए उपकृत

शान्त-दान्त-गम्भीर पूज्य उपाध्यायप्रवर श्री मानचन्द्र जी म.सा., मधुरव्याख्यानी श्री गौतममुनि जी म.सा. आदि ठाणा 5 का जोधपुर के विभिन्न उपनगरों में विचरण चल रहा है। प्रतिदिन श्रावक-श्राविकाओं का उल्लासपूर्वक दर्शन-वन्दन एवं प्रवचन-श्रवण हेतु आवागमन बना हुआ है। शक्तिनगर के सामायिक-स्वाध्याय-भवन में चार दिन विराजने के पश्चात् उपाध्यायप्रवर 28 मार्च को पावटा स्थित सामायिक स्वाध्याय भवन पधारे। यहाँ भी निरन्तर धर्माराधन होता रहा। यहाँ से 10 अप्रेल को विहार कर आपश्री संत-मण्डली के साथ घोड़ों का चौक स्थित सामायिक-स्वाध्याय भवन पधारे। चैत्र शुक्ला त्रयोदशी, 13 अप्रेल, 2014 को महावीर कॉम्प्लेक्स में सकल जैन समाज के द्वारा सामूहिक साधना का आयोजन प्रातः 7 से 8 बजे तक रखा गया, जिसमें महासती श्री विनीतप्रभा जी म.सा. एवं मधुरव्याख्यानी श्री गौतममुनिजी म.सा. ने प्रभु महावीर के जीवन-दर्शन और जैन धर्म की महत्ता पर प्रवचन फरमाया। लगभग 2500 व्यक्तियों ने सामायिक वेश में सामायिक की आराधना की। इस कार्यक्रम में रविवारीय संस्कार शिविर के लगभग 250 बालक-बालिकाओं ने भी सामायिक-साधना की। श्रद्धेय श्री गौतममुनि जी म.सा. ने जीवन में संयम के आचरण पर प्रेरक विचार व्यक्त किए तथा लगभग 20 वर्षों से चल रही इस प्रवृत्ति की निरन्तरता एवं संख्या पर संतोष प्रकट किया। घोड़ों का चौक से उपाध्यायप्रवर 18 अप्रेल को विहार कर सिंहपोल स्थानक पधारे। इस क्षेत्र में अनेक परिवार निवास करते हैं। उन्हें भी धर्म-साधना का पर्याप्त लाभ मिला। सिंहपोल से रविवार 27 अप्रेल को विहार कर आपश्री नेहरूपार्क स्थित सामायिक-स्वाध्याय भवन पधारे। यहाँ चतुर्दशी एवं पक्खी के अवसर पर दया-व्रत तथा संवर की आराधना हुई। उपाध्यायप्रवर के जोधपुर पदार्पण से सभी श्रावक-श्राविका के मन में अत्यन्त प्रमोद है। दर्शन-वन्दन के लिए प्रतिदिन श्रावक-श्राविकाओं का तांता लगा रहता है।

अहिंसात्मक चिकित्सा पद्धतियों एवं शिवाम्बु का छठा राष्ट्रीय अधिवेशन सम्पन्न

19 एवं 20 अप्रेल 2014 को जोधपुर से लगभग 30 किमी.दूर बिरामी ग्राम के भुवाल माता परिसर में आचार्य हस्ती शोध संस्थान, जोधपुर एवं अखिल भारतीय शिवाम्बु संस्थान के संयुक्त तत्त्वावधान में दो दिवसीय औषधविहीन चिकित्सा-पद्धतियों एवं शिवाम्बु के छट्ठे राष्ट्रीय अधिवेशन का आयोजन किया गया। इस सम्मेलन में देश के सभी

प्रान्तों से लगभग 350 प्रतिनिधियों ने भाग लिया।

सम्मेलन का प्रारम्भ श्री नवरतन जी डागा एवं श्री सुभाष जी गुंदेचा, ट्रस्टी-आचार्य हस्ती अहिंसा शोध संस्थान के मंगलाचरण से हुआ। सम्मेलन में पधारे अतिथियों का स्वागत करते हुए आचार्य हस्ती अहिंसा शोध संस्थान के प्रमुख ट्रस्टी डॉ. चंचलमल चोरडिया ने बताया कि शिवाम्बु हमारे लिए स्वयं का चिकित्सक है, स्वयं का अस्पताल है, स्वयं का सुरक्षा कवच है। आज विभिन्न असाध्य रोगों का इसके द्वारा सहज उपचार संभव है। मानव मूत्र के सम्बन्ध में अज्ञानवश भ्रामक प्रचार करने वाले आजतक यह सिद्ध नहीं कर सके कि इसमें हानिकारक पदार्थ क्या है?

अखिल भारतीय शिवाम्बु संस्थान के अध्यक्ष श्री विनुभाई जी. गाँधी ने कहा कि देश भर में शिवाम्बु से जुड़ी संस्थाओं के कारण इस पद्धति का भविष्य उज्ज्वल है।

इस सम्मेलन में कोलकाता से पधारे श्री सुनील मोहनोत ने नवम्बर-2013 में अमेरिका में आयोजित अन्तरराष्ट्रीय शिवाम्बु सम्मेलन की जानकारी दी एवं विश्व में इसके प्रति बढ़ते आकर्षण पर विस्तृत प्रकाश डाला।

विश्वभर में 100 शय्या का शिवाम्बु से उपचार करने का एक मात्र अस्पताल चलाने वाले कोल्हापुर (महा.) से पधारे शिवाम्बु हेल्थ रिसर्च इन्स्टीट्यूट के संचालक डॉ. सारंग एवं डॉ. नितिन पाटिल ने पिछले दस वर्षों में सैकड़ों कैंसर, हृदय, मधुमेह, गुर्दे एवं असाध्य रोगियों के उपचार की जानकारी दी। आगरा से पधारे डॉ. एच.सी. पचौरी (एम.बी.बी.एस.) ने शिवाम्बु से गत 20 वर्षों में किए गए उपचारों से प्राप्त परिणामों एवं शिवाम्बु के इंजेक्शन के द्वारा उपस्थित रोगियों पर प्रायोगिक प्रदर्शन किया। भारत एवं अमेरिका में शिवाम्बु प्रशिक्षक एवं सलाहकार डॉ. रक्षकमल लोढ़ा ने शिवाम्बु उपचार के बारे में अपने विचार व्यक्त किए। सम्मेलन के खुले सत्र में देशभर से पधारे प्रतिनिधियों ने अपने-अपने अनुभव सुनाये एवं अपनी शंकाओं का निराकरण किया।

इस अवसर पर गोल्डन फाउण्टेन यूरिन थैरेपी फाउण्डेशन संस्थान, केरल के मंत्री श्री चन्द्रन सूर्याशिला ने 'दी वॉटर ऑफ लाइफ : ए डॉक्यूमेंटरी ऑन यूरिन थैरेपी'' का विमोचन एवं प्रदर्शन किया। सम्मेलन में केरल से 30 प्रतिनिधियों ने विशेष रूप से भाग लिया।

इस सम्मेलन में उद्घाटन सत्र के साथ छह सत्रों में विभिन्न शोध पत्र पढ़े गये। सम्मेलन में वडोदरा से पधारे अन्तरराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त पिरामिड वास्तु विशेषज्ञ प्रो. जितेन भट्ट ने पिरामिड एवं चुम्बक चिकित्सा पर, डॉ. अशोक कोठारी, उपाध्यक्ष-सुजोक अन्तरराष्ट्रीय संस्था भारत शाखा, जयपुर ने सुजोक चिकित्सा पर, ऋषिकेश से पधारे संत श्री हरि ने ध्यान-योग पर प्रायोगिक प्रदर्शन, जय भगवान एक्यूप्रेशर अन्तरराष्ट्रीय आश्रम, गांधीधाम

के संचालक ने बिना शल्य चिकित्सा के घटनों एवं जोड़ों के उपचार एवं मेरुदण्ड सम्बन्धी विभिन्न रोगों के इलाज के बारे में जानकारी दी। स्वस्तिक हेल्थ केयर सेण्टर वडोदरा से पधारे श्री गिरधर भाई ने व्यक्ति के बालों के माध्यम से शरीर के विभिन्न रोगों के निदान एवं दूरस्थ चिकित्सा द्वारा उपचार की जानकारी दी।

सम्मेलन के समापन सत्र में अखिल भारतीय शिवाम्बु संस्थान, मुम्बई के राष्ट्रीय अध्यक्ष श्री विनुभाई जी. गाँधी ने डॉ. चंचलमल चोरडिया को राष्ट्रीय उपाध्यक्ष मनोनीत किया एवं सम्मेलन की सफलता हेतु उपस्थित प्रतिनिधियों का आभार प्रकट किया। अंत में ट्रस्टी श्री नवरतन जी डागा ने सम्मेलन में भाग लेने वाले प्रतिनिधियों, सहयोगियों कार्यकर्ताओं एवं संस्थाओं के प्रति आभार प्रकट किया। मंच का संचालन श्री प्रकाश जी सालेचा एवं श्री श्रीकांत जी गुप्ता ने किया।

संवत् 2071 के चातुर्मासों की घोषणा

आगममर्मज्ञ, जिनशासन गौरव, परमपूज्य आचार्यप्रवर श्री हीराचन्द्र जी म.सा. ने चैत्र कृष्णा अष्टमी 24 मार्च, 2014 को सुमेरगंजमण्डी (जिला-बूंदी) की प्रवचन-सभा में तथा उसके पश्चात् साधु मर्यादा में रखने योग्य आगारों के साथ विक्रम संवत् 2071 के निम्नांकित चातुर्मासों की घोषणा की है। कतिपय चातुर्मासों की घोषणा महावीर जयन्ती के अवसर पर जरखोदा में की गई है-

1. **रामपुरा बाजार, कोटा-** परमश्रद्धेय आचार्यप्रवर श्री हीराचन्द्रजी म.सा. आदि ठाणा
2. **शक्तिनगर, जोधपुर-** उपाध्यायप्रवर श्री मानचन्द्र जी म.सा. आदि ठाणा
3. **लाल भवन, जयपुर-** तत्त्वचिन्तक श्री प्रमोदमुनिजी म.सा. आदि ठाणा
4. **शक्तिनगर, जोधपुर-** साध्वीप्रमुखा महासती श्री मैनासुन्दरी जी म.सा.आदि ठाणा
5. **महावीर नगर,जयपुर-** विदुषी महासती श्री सौभाग्यवती जी म.सा. आदि ठाणा
6. **आदर्शनगर, अजमेर-** व्याख्यात्री महासती श्री मनोहरकंवर जी म.सा.आदि ठाणा
7. **जयपुर-** व्याख्यात्री महासती श्री सोहनकंवर जी म.सा. आदि ठाणा
8. **शाहीबाग, अहमदाबाद-** व्याख्यात्री महासती श्री इन्दुबाला जी म.सा.आदि ठाणा
9. **शूले-बैंगलोर (कर्नाटक)-** व्याख्यात्री महासती श्री ज्ञानलताजी म.सा. आदि ठाणा
10. **हैदराबाद-** व्याख्यात्री महासती श्री चारित्रलता जी म.सा. आदि ठाणा
11. **सतारा (महाराष्ट्र)-** व्याख्यात्री महासती श्री निःशल्यवती जी म.सा. आदि ठाणा
12. **आनन्दपुरी, कानपुर-** व्याख्यात्री महासती श्री मुक्तिप्रभा जी म.सा. आदि ठाणा
13. **शास्त्रीनगर, भीलवाड़ा-** व्याख्यात्री महासती श्री रुचिता जी म.सा. आदि ठाणा
14. **सोजतरोड-** क्षेत्र खाली नहीं रहेगा

अन्य प्रमुख चातुर्मास

1. **प्रशांत विहार, दिल्ली**– आचार्य डॉ. शिवमुनिजी म.सा.
2. **नागपुर, महाराष्ट्र**– ज्ञान गच्छाधिपति श्री प्रकाशचन्द्र जी म.सा.
3. **बैंगलोर, कर्नाटक**– आचार्य श्री रामलाल जी म.सा.
4. **चेन्नई, तमिलनाडु**– आचार्य श्री विजयराज जी म.सा.
5. **रायचूर, कर्नाटक**– गच्छाधिपति श्री उत्तममुनि जी म.सा.
6. **सफीदोमंडी, हरियाणा**– गच्छाधिपति श्री पदमचंद जी म.सा. 'शास्त्री'
7. **जोधपुर, राजस्थान**– आचार्य श्री शुभचन्द्र जी म.सा.
8. **मैसूर, कर्नाटक**– आचार्य श्री ज्ञानचन्द जी म.सा.
9. **अयनावरम्, चेन्नई**– आचार्य श्री सुदर्शनलाल जी म.सा.
10. **गोहाना मंडी, हरियाणा**– गच्छाधिपति श्री प्रकाशचन्द्र जी म.सा.
11. **दिल्ली**– आचार्य महाश्रमण जी म.सा.

जयपुर में ग्रीष्मकालीन धार्मिक शिविर 11 मई से

श्री जैन रत्न युवक परिषद्, जयपुर के तत्वावधान में गत 22 वर्षों से बालक-बालिकाओं में नैतिक शिक्षा देने हेतु और बच्चों के संस्कार सुदृढ़ करने के लिये ग्रीष्मकालीन शिविरों का आयोजन किया जा रहा है। सुबोध स्कूल में 11 मई से 8 जून तथा महावीर नगर, मालवीय नगर आदि अन्य 9 केन्द्रों पर 18 मई से 6 जून तक शिविर आयोजित किए जाएँगे। **सम्पर्क सूत्र**– प्रकाशमल लोढ़ा, संयोजक-09314245903, आशीष जामड़, संयोजक-9571906506

जीतो निःशुल्क प्रशासनिक प्रशिक्षण हेतु प्रतियोगी परीक्षा

जीतो प्रशासनिक प्रशिक्षण संस्थान मुम्बई द्वारा जैन ग्रेज्युएट छात्र/छात्राओं के भारतीय प्रशासनिक सेवा परीक्षा (आई.ए.एस., आई.पी.एस., आई.आर.एस., आई.एफ.एस.) व यूपीएसी/पीएससी परीक्षा की तैयारी के लिए प्रवेश परीक्षा 18 मई 2014 को चेन्नई, दिल्ली, इंदौर, जयपुर व पूना में आयोजित की जा रही है। विस्तृत जानकारी हेतु वेबसाइट www.jitoatf.org देखें। चयनित छात्रों को उच्च स्तर का प्रशिक्षण, मार्गदर्शन, आवास, भोजन, पुस्तकालय सुविधा एवं योग्यतम व्यक्तियों के साथ सामयिक विचार-विमर्श की निःशुल्क सुविधा दी जाएगी।– विवेक जैन-09414044519, रत्नेशकुमार पोखरना-09314087490, संकेत डोसी-JATF-SEED, 91-22-67100255

संक्षिप्त-समाचार

जयपुर- टोरन्टो (कनाडा) के वरिष्ठ रेडियोलोजिस्ट डॉ. भगवान सिंह जी अवकाश के समय जयपुर आए हुए थे। इसी दौरान उन्हें महासती श्री सुश्री प्रभाजी म.सा. के हार्ट में छेद का पता चला तो फोर्टिस अस्पताल में आपके सुझाव पर अम्ब्रेला तकनीक द्वारा महासती जी के हार्ट का छेद स्थाई रूप से बंद कर दिया गया। इस पद्धति द्वारा आप लगभग 20000 ऑपरेशन कनाडा में कर चुके हैं। नवदीक्षित श्री अभयमुनिजी के रीढ़ की हड्डी के ऑपरेशन के लिए आपने मुम्बई व दिल्ली के डॉक्टरों से सलाह कर अन्तिम निर्णय तक पहुँचाने में सहयोग किया। आपकी यह सेवा भावना अनुकरणीय है। -*सुरेशचन्द कोठारी*

बैंगलोर- रत्नहितैषी श्राविका मण्डल द्वारा महावीर जयन्ती के उपलक्ष्य में महावीर जैन कॉलेज में 6 अप्रेल 2014 को भक्ति संध्या आयोजित की गई। इस अवसर पर एक सहधर्मी बहिन को 5000 रुपये का चिकित्सा सहयोग, जरूरतमंद जैन बच्चों को शिक्षा के लिए 31000 रुपये वितरित किए गए।

जोधपुर- प्रवर्तक श्री रमेशमुनिजी म. आदि ठाणा और मेवाड़ गौरव प्रवर्तिनी डॉ. चन्दना जी म.सा. के सान्निध्य में 1 अप्रेल 2014 को मुमुक्षु सोनल बोहरा की भागवती दीक्षा सम्पन्न हुई। उनका नाम साध्वी राजकीर्ति रखा गया।

पाली-मारवाड़- सामायिक-स्वाध्याय भवन में चैत्र कृष्णा अष्टमी 24 मार्च, 2014 को आचार्यप्रवर पूज्य श्री हीराचन्द्र जी म.सा. का 76 वां जन्म-दिवस तप-त्याग, उपवास, पौषध, दया-संवर, एकाशन, आयम्बिल, साधना-आराधना के साथ मनाया गया। प्रवचन सभा में आचार्य श्री रामलाल जी म.सा. के आज्ञानुवर्ती संत श्रद्धेय श्री मदनमुनिजी एवं निश्चलमुनिजी ने आचार्यप्रवर के जीवन की विशेषताओं पर प्रकाश डाला।

जोधपुर- श्री सुधर्म विद्यापीठ में अध्ययन हेतु प्रवेश प्रारम्भ हो गया है। प्राईवेट बी.ए. के साथ विद्यार्थी को धार्मिक पाठ्यक्रम का अध्ययन करना होता है। इसके लिए उसे 3000/- रुपये प्रतिमाह स्कालरशिप दी जाती है। तीन वर्ष के अध्ययन के पश्चात् उसके लिए नौकरी भी सुनिश्चित होती है। **सम्पर्क सूत्र-** संयोजक, श्री सुधर्म विद्यापीठ, जोधपुर (राज.), फोन- 0291-2637838, मोबाइल-09821038256

उदयपुर- विभिन्न महाविद्यालयों तथा सी.ए., सी.पी.टी., सी.एस. की कोचिंग में अध्ययन करने वाले सभी सम्प्रदाय के जैन छात्रों के आवास व भोजन-व्यवस्था हेतु गणेश जैन छात्रावास में प्रवेश प्रारम्भ हो गया है। इच्छुक छात्र कार्यालय में सम्पर्क कर प्रवेश फार्म प्राप्त कर सकते हैं। छात्रावास में कुल 100 छात्रों के रहने व भोजन की उत्तम व्यवस्था है। **सम्पर्क**

सूत्र- श्री गणेश जैन छात्रावास (अन्तर्गतः श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ, बीकानेर), पद्मिनी मार्ग, राणा प्रतापनगर, उदयपुर (राज.), फोनः 0294-2494375, डॉ. विनोद महता, सचिव-07737018686

बैंगलोर- जैन युवा संगठन द्वारा संकलित एवं प्रकाशित "जैन एकता क्यों है जरूरी" पुस्तिका का आचार्यश्री यशोदेव सूरीश्वरजी, आचार्य श्री चन्द्रयश सूरीश्वर जी आदि साधु-साध्वीवृन्द के सान्निध्य में 13 अप्रेल 2014 को भव्य समारोह के साथ विमोचन-कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। श्री सज्जनराज जी मेहता के सत्प्रयासों से पुस्तक के संकलन का कार्य पूर्ण हुआ।

दिल्ली- आचार्य श्री विद्यानन्द जी म. के सान्निध्य में 13 अप्रेल 2014 को प्राकृत भाषा में प्रथम समाचार पत्रिका का विमोचन हुआ। इस पत्रिका के संस्थापक सम्पादक डॉ. अनेकान्त कुमार जैन हैं। आपने सम्प्रति प्राप्त राष्ट्रपति पुरस्कार की राशि को प्राकृत भाषा एवं जैनागम के संरक्षण एवं संवर्द्धन में उपयोग करने का संकल्प लिया है। इस समाचार पत्रिका का प्रकाशन उसी की एक शुरूआत है।

आबू पर्वत- उपप्रवर्तक श्री विनयमुनिजी म. आदि ठाणा 5 एवं श्रुताचार्या डॉ. मुक्तिप्रभाजी म. आदि ठाणा 5 के सान्निध्य में श्री वर्धमान महावीर केन्द्र के तत्त्वावधान में 7 से 15 अप्रेल तक नवदिवसीय आयंबिल ओली का भव्य आयोजन हुआ। देश के विभिन्न स्थानों से 275 साधकों ने इस तप महोत्सव में भाग लिया। प्रतिदिन प्रातः 4.30 बजे से रात्रि 10.00 बजे तक ध्यान, प्रतिक्रमण, योगासन, प्रार्थना, प्रवचन, प्रतियोगिताएँ आदि विभिन्न धार्मिक प्रवृत्तियों से नवदिवसीय आराधना उल्लासपूर्वक सम्पन्न हुई। साथ ही उपाध्याय श्री कन्हैयालालजी म. 'कमल' की पावन स्मृति में 'कमल कन्हैया विहार' में नवनिर्मित समाधि-स्थल का भव्य उद्घाटन सम्पन्न हुआ।

राणावास- श्री मरुधर केसरी उच्च माध्यमिक विद्यालय में प्रवेश के साथ छात्रावास की सुविधा भी उपलब्ध है। विद्यालय में कक्षा 6 से 12 तक वाणिज्य, कला, विज्ञान और कम्प्यूटर विज्ञान की शिक्षा दी जाती है। पौष्टिक एवं संतुलित आहार के साथ नियमित सामायिक, स्वाध्याय आदि का भी कार्यक्रम रहता है। प्रतिभासम्पन्न एवं निर्धन छात्रों के लिए शुल्क मुक्ति की व्यवस्था है। **सम्पर्क सूत्र-** अध्यक्ष/मंत्री-02935-237423, 94138-92099

लासलगाँव- श्री महावीर जैन विद्यालय के वसतीगृह में कक्षा 5 से 10 (माध्यमिक) तक कक्षा 11 से 12 वीं आर्ट्स, कॉमर्स, साइन्स (उच्च माध्यमिक) तक के छात्रों को तथा

आई.टी.आई. सर्टिफिकेट कोर्स (इलेक्ट्रीशियन तथा फिटर ट्रेड) के लिये प्रवेश प्रारम्भ हो गया है। होनहार और आर्थिक स्थिति से कमजोर छात्रों को संस्था की ओर से सहयोग दिया जाएगा। पूरित प्रवेश फार्म 9 जून 2014 तक भेजें। **सम्पर्क सूत्र-** श्री महावीर जैन विद्यालय, महावीर नगर, कॉलेज रोड, लासलगाँव-422306, ता. निफाड, जिला-नाशिक (महा.) फोनः-02550-266358

बधाई

आर.एम. लोढ़ा बने सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति

दिल्ली- राजस्थान में जोधपुर के मूल निवासी एवं देश के वरिष्ठ न्यायाधिपति माननीय श्री

राजेन्द्रमल जी लोढा को राष्ट्रपति श्री प्रणव मुखर्जी ने 27 अप्रेल 2014 को सर्वोच्च न्यायालय के 41 वें मुख्य न्यायाधिपति के पद की शपथ दिलाई। 64 वर्षीय लोढ़ा साहब ने राजस्थान उच्च न्यायालय में वकालात प्रारम्भ की तथा जनवरी 1994 में न्यायाधिपति के पद पर आसीन हुए। फरवरी 1994 में आप मुम्बई उच्च न्यायालय के न्यायाधिपति बने जहाँ आपने लगभग 13 वर्ष उल्लेखनीय सेवाएँ प्रदान की। पुनः आप राजस्थान उच्च न्यायालय में कुछ अवधि के लिए आकर 13 मई 2008 को पटना उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति बने। यहाँ से 17 दिसम्बर 2008 को आप सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधिपति के रूप में नियुक्त किए गए। आप के द्वारा किए गए निर्णय कानून से सम्बद्ध अनेक पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहे हैं। 28 सितम्बर 1949 को जन्मे श्री लोढ़ा साहब अखिल भारतीय श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ के संरक्षक एवं राजस्थान उच्च न्यायालय के पूर्व न्यायाधिपति स्व. श्री श्रीकृष्णमल जी लोढ़ा तथा गुरुभक्त समर्पित श्राविकारत्न स्व. श्रीमती उगमकंवर जी लोढ़ा के योग्य सुपुत्र हैं। सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति बनने से संघ, समाज एवं राजस्थान का गौरव बढ़ा है।

हुबली- भारतीय जैन संगठना (बीजेएस) तमिलनाडु के पूर्व राज्य अध्यक्ष एवं वर्तमान

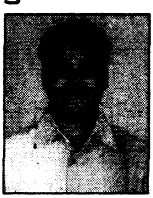

राष्ट्रीय कार्यकारिणी सदस्य तथा स्वाध्याय संघ, जोधपुर के निदेशक श्री राजेन्द्र जी लुंकड़, इरोड को राजस्थानी एसोसिएशन तमिलनाडु द्वारा एक समारोह में राजस्थानी युवा रत्न का अवार्ड प्रदान किया गया। इस समारोह में बड़ी संख्या में प्रवासी राजस्थानी उपस्थित थे। समारोह की मुख्य

अतिथि राजश्री बिड़ला और मद्रास उच्च न्यायालय के न्यायाधीश धनपालन थे। श्री लुंकड़ जी गत 7 वर्षों से सामाजिक कार्यों में जुटे हुए हैं और वर्तमान में बीजेएस के मास्टर ट्रेनर राष्ट्रीय समिति के सदस्य हैं।

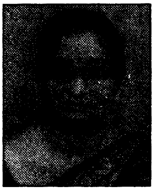

जयपुर- श्रीमती रीना जैन, प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर को राजस्थान विश्वविद्यालय के जैन अनुशीलन केन्द्र से ''मानवाधिकार और जैन धर्म'' विषय पर पी.एच्.डी. की उपाधि प्राप्त हुई है। इनका शोध कार्य प्रो. पी.सी. जैन के निर्देशन में सम्पन्न हुआ।

नासिक- नासिक जिले के मशहूर उद्योगपति मनमाड निवासी श्री सम्पतलाल जी सुराणा को जैन समाज की ओर से मरुधर रत्न उपाधि से 19 अप्रेल 2014 को भव्य समारोह में जैन उद्योग समूह, जलगाँव के अध्यक्ष पद्मश्री डॉ. भंवरलाल जी जैन के कर कमलों द्वारा गौरवान्वित किया गया। उनके धार्मिक, सामाजिक, शैक्षणिक क्षेत्र में किए गए उल्लेखनीय योगदान के कारण यह उपाधि उन्हें प्रदान की गई। आपने शिक्षा, समाज, संस्कार के प्रति अपना उत्तरदायित्व बखूबी निभाया। आप भाऊसा के नाम से प्रसिद्ध हैं। समारोह में सुराणा जी (भाऊसा) का जीवन चलचित्र द्वारा दर्शाया गया।

श्रद्धांजलि

ब्यावर- धर्मनिष्ठ, श्रद्धानिष्ठ आदर्श श्रमणोपासिका श्रीमती कमलादेवी जी कोठारी

धर्मपत्नी सुश्रावक स्व. श्री सुखराज जी कोठारी का 10 मार्च, 2014 को पण्डितमरण हो गया। आप सादगी, सरलता एवं शान्तिप्रिय होने के साथ नियमित साधना में रत रहती थीं। रत्न संघ के प्रमुख श्रावक श्री चेतनप्रकाश जी डुंगरवाल, बैंगलोर की बहिन एवं जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ, ब्यावर के कोषाध्यक्ष संघसेवी सुश्रावक श्री विजयराजजी कोठारी की आप माताजी थीं। मरणोपरान्त कोई भी सांसारिक कार्य नहीं किया गया। आप अपने पीछे भरापूरा धर्मनिष्ठ परिवार छोड़कर गई हैं।

अजमेर- श्रद्धाशील श्रीमती मीनाक्षी जी धर्मपत्नी श्री कुशालदासजी रीयांवाला (मुणोत)

का 06 अप्रेल 2014 को स्वर्गवास हो गया। आप सरल स्वभावी, मिलनसार श्राविका रत्न थीं। आपका सम्पूर्ण परिवार रत्नसंघ के प्रति तन-मन-धन से समर्पित है। आपके पुत्र श्री विनीत जी, सुमितजी एवं रोहित जी संत-सेवा में सदैव अग्रणी रहते हैं। आप अपने पीछे भरा-पूरा परिवार छोड़ गई हैं।

जयपुर- धर्मनिष्ठ सुश्राविका श्रीमती पुष्पा जी मुणोत धर्मपत्नी स्व. श्री चन्द्रसिंह जी मुणोत

का 13 अप्रेल 2014 को देवलोकगमन हो गया। आपने आचार्यप्रवर श्री हीराचन्द्र जी म.सा. की आज्ञानुवर्तिनी महासती श्री विमलावती जी म.सा. के मुखारबिन्द से संथारे का प्रत्याख्यान ग्रहण किया गया। आपके कई वर्षों से रात्रिभोजन व जमीकन्द का त्याग था। रत्नसंघ के संत-सतियों के प्रति आपकी गहरी आस्था थी। आप सुपुत्र श्री विजयसिंहजी, शैलेन्द्रसिंह जी मुणोत एवं दो पुत्रियों का भरा-पूरा परिवार छोड़कर गई हैं।

जोधपुर- सुश्राविका श्रीमती प्रेमलता जी कांकरिया धर्मपत्नी श्री सुनील जी कांकरिया का

04 अप्रेल, 2014 को स्वर्गगमन हो गया। सुश्राविका का जीवन संघ व समाज-सेवा में समर्पित रहा। उनका जीवन सरलता, मधुरता, उदारता, सेवाभावना आदि सद्गुणों से युक्त था। आप नियमित सामायिक-स्वाध्याय करने वाली श्राविका थीं। आपने अपने जीवन में अनेक त्याग-प्रत्याख्यान ग्रहण कर रखे थे। संत-सतीवृन्द की सेवा-भक्ति में भी वे सदैव तत्पर रहती थीं। स्वधर्मी वात्सल्य एवं आतिथ्य-सत्कार में भी कांकरिया परिवार सदैव समर्पित रहा है।

जोधपुर- संबोधि धाम की संस्थापिका साध्वी श्री जितयशाजी महाराज का 86 वर्ष की वय में 4 अप्रेल 2014 को देवलोकगमन हो गया। वे संत श्री ललितप्रभ जी एवं चन्द्रप्रभजी की सांसारिक माताजी थी।

जोधपुर- सुश्राविका श्रीमती शान्तिदेवी जी धर्मपत्नी स्व. श्री सायरचन्द जी घीया (पीपाड़ निवासी) का 16 अप्रेल 2014 को 80 वर्ष की वय में देहावसान हो गया। आप नियमित रूप से सामायिक-स्वाध्याय करने वाली श्राविका थी। आपने अनेक त्याग-प्रत्याख्यान ग्रहण किए थे। आप अपने पीछे धर्मनिष्ठ परिवार छोड़कर गई हैं।

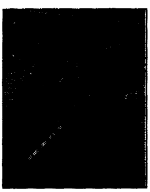

जोधपुर- श्रद्धाशील सुश्राविका श्रीमती सोहनकंवरजी संचेती धर्मपत्नी श्री सोहनलाल जी संचेती का 30 मार्च, 2014 को 80 वर्ष की वय में देहावसान हो गया। सामायिक-स्वाध्याय के साथ साधना और संत-सतीवृंद के निरंतर दर्शन-वंदन एवं प्रवचन-श्रवण का लाभ लेने वाली श्राविका ने विगत कई दशकों से चौविहार एवं कंद मूल का त्याग आदि प्रत्याख्यान ले रखे थे। आपकी जप-तप में निरन्तर रुचि थी तथा आपने श्रद्धानिष्ठ

सुश्रावक एवं होम्योपैथी के चिकित्सक श्री सोहनलाल जी संचेती के साथ जोड़े से दो वर्षीतप के अलावा अगणित उपवास, बेला, तेला, अट्ठाई तप किये। आयम्बिल ओली में भी बढ़-चढ़ कर भाग लेती थी तथा भजन गाने एवं धार्मिक प्रश्नोत्तरी में आप रुचिशील थीं।

भीलवाड़ा-सुश्राविका श्रीमती राजवंती सांखला धर्मसहायिका श्री ज्ञानचन्द जी सांखला का 01 अप्रेल 2014 को स्वर्गगमन हो गया। आप धर्मनिष्ठ दृढ़धर्मी, सरल स्वभावी, मृदुभाषी एवं तपस्वीरत्न श्राविका थीं। आपने जीवन में वर्षीतप, अठाई, मासखमण आदि अनेकविध तपस्या की। विगत 3 वर्षों से आप अस्वस्थ थीं। फिर भी प्रतिदिन व्रत प्रत्याख्यान एवं नियमित स्वाध्याय करती थीं।

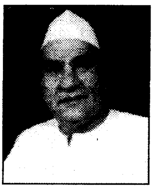

चेन्नई- वरिष्ठ शिक्षाविद् और समाजसेवी सुश्रावक डॉ. जे. रतनचन्द जी बोहरा सुपुत्र स्व. श्री जबरचन्द जी बोहरा 13 मार्च, 2014 को हृदयगति रुक जाने से स्वर्ग सिधार गए। मूलतः राजस्थान के नागौर जिलान्तर्गत कुचेरा निवासी 85 वर्षीय डॉ. बोहरा का सम्पूर्ण जीवन शिक्षा, सेवा और परोपकार के लिए समर्पित रहा। आपने तमिलनाडु सरकार की ओर से 15 वर्षों तक मानद् प्रेसिडेंसी मजिस्ट्रेट (शान्ति के न्यायाधीश) के रूप में सेवाएँ दीं। आप अ.भा.श्वे. स्था. जैन कॉन्फ्रेंस, नई दिल्ली से चार दशक तक जुड़े रहे और कॉन्फ्रेंस में मार्गदर्शक तथा वरिष्ठ उपाध्यक्ष के अलावा करीब 8 वर्षों तक मंत्री रहे।

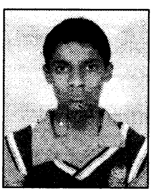

नसीराबाद- श्री आयुष जैन (मुणोत) का आकस्मिक निधन 23 मार्च, 2014 को 18 वर्ष की अल्पायु में हो गया। आप होनहार, प्रतिभा सम्पन्न, मातृ-पितृ आज्ञाकारी, मित्रों में समन्वयकारी युवक थे। धार्मिक व सामाजिक कार्यों में पूर्ण रुचि रखते थे। आप स्थानीय संघ संरक्षक व पूर्व अध्यक्ष श्रीमान् ताराचन्द जी मुणोत के सुपौत्र व मनीष जी के सुपुत्र थे।

इन्दौर- धर्मनिष्ठ श्रीमती पुष्पाबाई जैन धर्मपत्नी श्री कालूरामजी जैन का 26 फरवरी, 2014 को स्वर्गगमन हो गया।

उपर्युक्त दिवंगत आत्माओं के प्रति सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल, जिनवाणी-परिवार तथा अ.भा. श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए उनके परिवारजनों के प्रति गहरी संवेदना व्यक्त करते हैं।

सम्पूर्ण भारत से प्रवेशार्थ आवेदन-पत्र आमन्त्रित

आचार्य हस्ती आध्यात्मिक शिक्षण संस्थान में अध्ययन की उत्कृष्ट सुविधा

परम श्रद्धेय आचार्यप्रवर 1008 श्री हस्तीमल जी म.सा. की प्रबल प्रेरणा से सन् 1973 में संस्थापित एवं गजेन्द्र चेरिटेबल ट्रस्ट द्वारा संचालित आचार्य हस्ती आध्यात्मिक शिक्षण संस्थान, जयपुर में नैतिक संस्कारों के साथ आध्यात्मिक शिक्षण प्राप्त करते हुए विद्यालय, महाविद्यालय, प्रोफेशनल एवं प्रशासनिक स्तरीय का उच्च शिक्षण प्राप्त करने के इच्छुक जैन विद्यार्थियों से वर्ष 2014 में संस्थान में प्रवेश हेतु आवेदन आमंत्रित हैं। विगत 39 वर्षों में यहाँ से अध्ययन कर लगभग 120 विद्यार्थी वर्तमान में प्रशासनिक, राजकीय एवं व्यावसायिक क्षेत्रों में सेवारत हैं।

संस्थान में प्रवेश हेतु प्रक्रिया-

1. कक्षा आठ से उच्च कक्षा उत्तीर्ण विद्यार्थी आवेदन पत्र प्राप्त कर निश्चित तिथि से पूर्व आवेदन पत्र जमा करावें।
2. विद्यालय, महाविद्यालय एवं प्रोफेशनल अध्ययन के साथ प्रशासनिक सेवाओं के प्रतियोगियों के लिए सभी विषयों में आवेदन आमंत्रित है। आर्ट्स (कला संकाय में संस्कृत विषय) लेने वाले विद्यार्थियों को प्रवेश प्रक्रिया में विशेष छूट संभावित है।
3. संस्थान में प्रवेश हेतु विद्यार्थी का शैक्षणिक स्तर पर 58 प्रतिशत एवं उससे अधिक अंक होना, आध्यात्मिक रुचि का होना आवश्यक है। पारिवारिक आय स्तर भी प्राथमिकता रखेगा।
4. प्राप्त आवेदनों में से शैक्षणिक व आध्यात्मिक योग्यतानुसार चयनित छात्र ही प्रवेश हेतु साक्षात्कार में आमंत्रित किये जायेंगे, जिसकी सूचना आवेदनकर्त्ताओं को की जायेगी।

नियम एवं सुविधाएँ-

1. संस्थान में अध्ययनानुकूल उचित आवास एवं भोजन की निःशुल्क व्यवस्था।
2. विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास हेतु अँग्रेजी एवं विविध विषयों पर विशेष आमंत्रित महानुभावों द्वारा अभिप्रेरणा एवं कार्यशाला का आयोजन। संस्थान द्वारा भाषण, गायन, वाद-विवाद, गेम शो का समय-समय पर आयोजन।
3. सुसज्जित पुस्तकालय, विभिन्न समाचार पत्र-पत्रिकाएँ एवं कम्प्यूटर शिक्षण की उत्तम व्यवस्था।
4. विद्यार्थियों को स्कूल एवं महाविद्यालय के अध्ययन के साथ संस्थान द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रम का अध्ययन अनिवार्य है।
5. संस्थान द्वारा निर्धारित अन्य नियमों एवं उपनियमों का पालन अनिवार्य।

जो भी विद्यार्थी नैतिक एवं आध्यात्मिक संस्कारों के शिक्षण के साथ विद्यालय, महाविद्यालय, प्रोफेशनल एवं प्रशासनिक स्तर के उच्च शिक्षण हेतु जयपुर में रहकर संस्थान में प्रवेश लेना चाहते हैं, वे दिये गये प्रवेश आवेदन पत्र को भरकर शीघ्र निम्न पते पर प्रेषित करावें- **दिलीप जैन**, ***संयोजक/अधिष्ठाता, आचार्य हस्ती आध्यात्मिक शिक्षण संस्थान, ए-9, महावीर उद्यान पथ, बजाज नगर, जयपुर-302015 (राज.) फोनः 0141-2710946, 094614-56489, ईमेलः- ahassansthan@gmail.com***

साभार-प्राप्ति-स्वीकार

1000/- जिनवाणी पत्रिका की 20 वर्षीय आजीवन-सदस्यता हेतु प्रत्येक

क्रम संख्या 15240 से 15246 तक 7 सदस्य बने।

'जिनवाणी' मासिक पत्रिका हेतु साभार प्राप्त

5000/- श्री सूरजमलजी, कमल कुमारजी भंडारी (निमाज वाले), चेन्नई, चि. आशीष कुमारजी के मायरे के उपलक्ष्य में।

3500/- श्री गौतमचन्दजी संकलेचा, कुम्बकौणम् (तमिलनाडू) सहयोगार्थ।

2500/- श्री प्रवीणकुमार जी संकलेचा, कुम्बकौणम् (तमिलनाडू) सहयोगार्थ।

2500/- श्री मनोजकुमारजी संकलेचा, कुम्बकौणम् (तमिलनाडू) सहयोगार्थ।

2500/- श्रीमती पद्मावती जी संकलेचा, कुम्बकौणम् (तमिलनाडू) सहयोगार्थ।

2500/- श्रीमती नीता जी, भागचन्द जी भण्डारी, कुम्बकौणम् (तमिलनाडू) सहयोगार्थ।

2500/- श्री शैलेष जी संकलेचा, कुम्बकौणम् (तमिलनाडू) सहयोगार्थ।

2500/- श्रीमती रक्षिता जी संकलेचा, कुम्बकौणम् (तमिलनाडू) सहयोगार्थ।

2500/- श्री सिद्धार्थ जी संकलेचा, कुम्बकौणम् (तमिलनाडू) सहयोगार्थ।

2500/- श्री प्रकाशचन्दजी पगारिया, कोटा।

2500/- श्री पारसमलजी, घीसालालजी, पदमचंदजी, कमलचंदजी, सुनीलजी बम्ब (किशनगढ़ वाले), जयपुर, श्रीमती चाँदकँवरजी धर्मसहायिका श्री पदमचन्दजी बम्ब का 11 अप्रेल 2014 को स्वर्गवास हो जाने पर उनकी पुण्य स्मृति में।

2100/- श्री ज्ञानचन्दजी, एवन्तजी मूथा, जयपुर, श्रीमान् मोहनलालजी मूथा की पुण्य स्मृति में भेंट।

1100/- श्री विजयजी-जतिन जी नाहर (बरेली वाले), इन्दौर, सहयोगार्थ।

1100/- श्री कमलकिशोरजी, अभय कुमारजी कांकरिया, चेन्नई, सौ.कां. रूपाजी सुपुत्री श्रीमती उर्मिलाजी कमलकिशोरजी कांकरिया का शुभ-विवाह श्री रोहितजी सुराणा के साथ 10 फरवरी 2014 सानन्द सम्पन्न होने के उपलक्ष्य में।

1100/- श्रीमती निर्मलादेवीजी, सुनीलजी, सुरेन्द्रजी, सुधीरजी, संदीपजी डागा, जयपुर, श्री कैलाशजी डागा की पुण्य तिथि 26 अप्रैल को होने के उपलक्ष्य में।

1100/- श्री महावीरप्रसादजी, पारसचन्दजी जैन, चिमन बाग-इंदौर, पूज्य पिताश्री कल्याणमलजी जैन की पुण्यस्मृति में।

1100/- श्रीमती मैनाजी मुकीम, जयपुर, श्री नवरतनमलजी मुकीम की पुण्य स्मृति में भेंट।

1100/- श्रीमती मुन्नादेवीजी कोठारी, जयपुर।

श्री स्थानकवासी जैन स्वाध्याय संघ हेतु साभार प्राप्त

5000/- श्री जौहरीमल जी गजराजजी चाम्बड मेहता, जोधपुर, सहयोगार्थ।

4000/- श्रीमती पद्मावती जी संकलेचा, कुम्बकौणम् (तमिलनाडू) सहयोगार्थ।

4000/- श्रीमती नीता भागचंद जी भण्डारी, कुम्बकौणम् (तमिलनाडू) सहयोगार्थ।

4000/- श्री शैलेश जी संकलेचा, कुम्बकौणम् (तमिलनाडू) सहयोगार्थ।

4000/- श्रीमती रक्षिता जी संकलेचा, कुम्बकौणम् (तमिलनाडू) सहयोगार्थ।

4000/- श्री सिद्धार्थ जी संकलेचा, कुम्बकौणम् (तमिलनाडू) सहयोगार्थ।

4000/- श्री गौतमचन्द जी संकलेचा, कुम्बकौणम् (तमिलनाडू) सहयोगार्थ।

4000/- श्री प्रवीणकुमार जी संकलेचा, कुम्बकौणम् (तमिलनाडू) सहयोगार्थ।

3000/- श्री मनोजकुमार जी संकलेचा, कुम्बकौणम् (तमिलनाडू) सहयोगार्थ।

2100/- अमृतकंवर कल्याणमल चोरडिया ट्रस्ट, चेन्नई, सहयोगार्थ।

1100/- डॉ. सोहनलाल जी संचेती, जोधपुर, अपनी धर्मसहायिका श्रीमती सोहनकंवर जी संचेती का 30 मार्च, 2014 को स्वर्गवास हो जाने पर उनकी पावन स्मृति में।

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल के सत्साहित्य प्रकाशनार्थ अर्थसहयोग

51000/- श्री गौतमचन्द जी संकलेचा एवं पारिवारिकजन, कुम्बकौणम् (तमिलनाडू) सहयोगार्थ।

अ.भा.श्री जैन रत्न आ. शिक्षण बोर्ड को पुस्तक प्रकाशन हेतु साभार प्राप्त

15000/- श्री जे. मन्नुलाल जी मुणोत, चिन्तादरीपेठ, चेन्नई।

6000/- श्रीमती अनुराधा जी मेहता, चिन्तादरीपेठ, चेन्नई।

4000/- श्री गौतमचन्द जी संकेलचा, कुम्बकौणम् (तमिलनाडू) सहयोगार्थ।

4000/- श्रीमती पद्मावती जी संकलेचा, कुम्बकौणम् (तमिलनाडू) सहयोगार्थ।

4000/- श्रीमती नीताजी भागचंद जी भण्डारी, कुम्बकौणम् (तमिलनाडू) सहयोगार्थ।

4000/- श्री शैलेश जी संकलेचा, कुम्बकौणम् (तमिलनाडू) सहयोगार्थ।

4000/- श्रीमती रक्षिता जी संकलेचा, कुम्बकौणम् (तमिलनाडू) सहयोगार्थ।

4000/- श्री सिद्धार्थ जी संकलेचा, कुम्बकौणम् (तमिलनाडू) सहयोगार्थ।

4000/- श्री प्रवीणकुमार जी संकलेचा, कुम्बकौणम् (तमिलनाडू) सहयोगार्थ।

3000/- श्री मनोजकुमार जी संकलेचा, कुम्बकौणम् (तमिलनाडू) सहयोगार्थ।

गजेन्द्र निधि द्वारा संचालित आचार्य हस्ती मेधावी छात्रवृत्ति योजना

(अखिल भारतीय श्री जैन रत्न युवक परिषद् द्वारा क्रियान्वित)

दानदाता एवं दान एकत्रित करने वालों की सूची

60000/- श्री नन्दकिशोर जी नीरा जी बाफना (भोपालगढ़ वाले), मुम्बई।

12000/- श्रीमती बबीता महेन्द्रकुमार जी बाफना, जलगाँव, सौ. बबीता महेन्द्र जी बाफना द्वारा स्वप्निका प्रतियोगिता में भारतवर्ष में चौथा स्थान प्राप्त करने पर प्राप्त पुरस्कार राशि को छात्रवृत्ति योजना में सहयोग हेतु प्रदत्त।

भूल सुधार

24000/- जिनवाणी अप्रेल-2014 में श्री सोहनलालजी, महावीरजी, अनिल जी बोथरा, भोपालगढ़ के रुपये 12000 के स्थान पर 24000 पढ़ा जाए।

छात्रवृत्ति-योजना में इच्छुक दानदाता एक छात्र के लिए 12000/- रु. अथवा उनके गुणक में जितनी छात्रवृत्तियाँ देना चाहें तदनुसार दानराशि 'गजेन्द्र निधि आचार्य श्री हस्ती स्कॉलर शिप फण्ड' योजना के नाम चैक या ड्राफ्ट(Donations to Gajendra Nidhi are exempted u/s 80G of IncomeTax Act 1961) से निम्नांकित पते पर भेजने का कष्ट करें- *श्री अशोक जी कवाड़,* 33, *Montieth Road, Egmore, Chennai-600008 (Mob. 9381041097)*

आगामी पर्व

वैशाख शुक्ला 13, सोमवार	**12.05.2014**	**उपाध्यायप्रवर पं. रत्न श्री मानचन्द्र जी म.सा. का 52 वां दीक्षा दिवस।**
वैशाख शुक्ला 15, बुधवार	**14.05.2014**	**पक्खी**
ज्येष्ठ कृष्णा 5, सोमवार	**19.05.2014**	**आचार्यप्रवर श्री हीराचन्द्र जी म.सा. का 24 वां आचार्यपदारोहण दिवस।**
ज्येष्ठ कृष्णा 6, मंगलवार	**20.05.2014**	**पू. कुशलचन्दजी म. की 231 वीं पुण्यतिथि**
ज्येष्ठ कृष्णा 8, बुधवार	**21.05.2014**	**अष्टमी**
ज्येष्ठ कृष्णा 14, मंगलवार	**27.05.2014**	**चतुर्दशी**
ज्येष्ठ कृष्णा 30, बुधवार	**28.05.2014**	**पक्खी**
ज्येष्ठ शुक्ला 8, शुक्रवार	**06.06.2014**	**अष्टमी**
ज्येष्ठ शुक्ला 14, गुरुवार	**12.06.2014**	**चतुर्दशी, क्रियोद्धारक आचार्य पूज्य श्री रतनचन्द्र जी म.सा. की 169 वीं पुण्यतिथि.**
आषाढ़ कृष्णा, 1 एवं 2, शनिवार	**14.06.2014**	**पक्खी, 218 वाँ क्रियोद्धारक दिवस**
आषाढ कृष्णा 8, शुक्रवार	**20.06.2014**	**अष्टमी**
आषाढ कृष्णा 10, रविवार	**22.06.2014**	**आर्द्रा नक्षत्र प्रारम्भ**

अनमोल वचन

संकलन : श्री आशीष जैन

1. विपत्ति महानतर शिक्षक है। यह हमें प्रशिक्षित करती है तथा शक्तिशाली बनाती है।
2. बाँट लेने से सुख दुगुना होता है और दुःख आधा।
3. खुशनसीब वह नहीं, जिसका नसीब अच्छा है। खुशनसीब वह है जो अपने नसीब से खुश है।
4. मेहनत इतनी खामोशी से करो कि सफलता शोर मचा दे।

-आचार्य हस्ती आध्यात्मिक शिक्षण संस्थान,
ए-9, महावीर उद्यान पथ, बजाज नगर, जयपुर-302015(राज.)

ईस्वी सन् 2014 के घोषित अहिंसक अगते

(जो प्रतिवर्ष प्रभावी है)

राजस्थान सरकार स्वायत्त शासन विभाग के नोटिफिकेशन संख्या एफ. 1/609/एल.ए.जी./49 दिनांक 14.01.50, 20.11.67, 12.09.74, 29.09.88 एवं एफ.-29/विविध/डी.एल.बी./2000/1394-1617 दिनांक 18.5.2000 एवं स्वायत शासन विभाग 2001/7740 दिनाँक 28.08.02 के अनुसार ईस्वी सन् 2014 में राज्य में घोषित अहिंसक अगताओं की माहवार सूची नीचे दी जा रही है। इन दिनों बूचड़खाने, कसाई खाने व पशुओं को कत्ल कर मांसादि का विक्रय करना कानूनन निषिद्ध है।

क्र.सं.	दिनांक	नाम अगता	वार	घोषित तिथि / दिनांक
1.	26 जनवरी	गणतन्त्र दिवस	रविवार	26 जनवरी
2.	30 जनवरी	गांधी निर्वाण दिवस	गुरुवार	30 जनवरी
3.	28 फरवरी	महाशिवरात्रि	शुक्रवार	फाल्गुन कृ. 14
4.	08 अप्रेल	(स्था.)महा.ज्योतिराव फूले ज.	मंगलवार	चैत्र शु. 9
5.	08 अप्रेल	रामनवमी	मंगलवार	चैत्र शु. 9
6.	13 अप्रेल	भ. महावीर जयंती	रविवार	चैत्र शु. 13
7.	14 अप्रेल	(स्था.) अम्बेड़कर जयंति	सोमवार	14 अप्रेल
8.	10 मई	आ.देवेन्द्रमुनि निर्वाण दिवस	शनिवार	वैशाख शु. 11
9.	14 मई	बुद्ध पूर्णिमा	बुधवार	वैशाख शु. 15
10.	15 अगस्त	स्वतन्त्रता दिवस	शुक्रवार	15 अगस्त
11.	17 अगस्त	श्री कृष्ण जन्माष्टमी	रविवार	भादवा कृष्णा 8
12.	29 अगस्त	गणेश चतुर्थी	शुक्रवार	भादवा शु. 4
13.	30 अगस्त	ऋषि पंचमी	शनिवार	भादवा शु. 5
14.	08 सितम्बर	अनन्त चतुर्दशी	सोमवार	भादवा शु. 14
15.	02 अक्टूबर	गाँधी जयंती	गुरुवार	2 अक्टूबर
16.	19 अक्टूबर	पेडा ग्यारस	रविवार	कार्तिक कृ. 13
17.	21 अक्टूबर	छोटी दीपावली	मंगलवार	कार्तिक कृ. 14
18.	23 अक्टूबर	दीपावली	गुरुवार	कार्तिक कृ. अमावस
19.	24 अक्टूबर	(स्था.) अग्रसेन जयंती	शुक्रवार	कार्तिक शु. 1
20.	06 नवम्बर	कार्तिक पूर्णिमा	गुरुवार	कार्तिक शु. 15

नोट-1. राजस्थान उच्च न्यायालय, जयपुर खण्डपीठ के निर्णय रिट याचिका सं. 1170/88 दिनांक 26.07.88 तथा श्रम विभाग के आदेश सं. एफ.11/9/श्रम/86 दिनांक 22.12.88 के अनुसार **प्रत्येक शुक्रवार को भी अहिंसक अगता घोषित** है।

2. अगतों की पालनार्थ कृपया संबंधित पालिकाधिकारी, जिला कलेक्टर, उपखण्ड अधिकारी, तहसीलदार व पुलिस अधीक्षक, थानाधिकारी व श्रम विभाग अधिकारी से सम्पर्क करें।

-प्रेमचन्द कोठारी, बून्दी(राज.)

पर्युषण पर्वाराधना हेतु स्वाध्यायी आमन्त्रित कीजिए

श्री स्थानकवासी जैन स्वाध्याय संघ, जोधपुर विगत 68 से भी अधिक वर्षों से सन्त-सतियों के चातुर्मासों से वंचित गाँव/शहरों में 'पर्वाधिराज पर्युषण पर्व' के पावन अवसर पर धर्माराधन हेतु योग्य, अनुभवी एवं विद्वान् स्वाध्यायियों को बाहर क्षेत्र में भेजकर जिनशासन एवं समाज की महती सेवा करता आ रहा है। इस वर्ष भी उन क्षेत्रों में जहाँ जैन सन्त-सतियों के चातुर्मास नहीं हैं, स्वाध्यायी बन्धुओं को भेजने की व्यवस्था है। इस वर्ष **पर्युषण पर्व 23 से 30 अगस्त 2014** तक रहेंगे। अतः देश-विदेश के इच्छुक संघ के अध्यक्ष/मंत्री निम्नांकित बिन्दुओं की जानकारी के साथ अपना आवेदन पत्र दिनांक **15 जुलाई 2014** तक इस कार्यालय को अवश्य प्रेषित करने का श्रम करावें। पहले प्राप्त आवेदन पत्रों को प्राथमिकता दी जायेगी।

1. गांव/शहर का नाम......................जिला..............प्रान्त................
2. श्री संघ का नाम व पूरा पता...
3. संघाध्यक्ष का नाम, पता मय फोन नं...
....
4. संघ मंत्री का नाम, पता मय फोन नं...
....
5. संबंधित जगह पहुंचने के विभिन्न साधन..
....
6. समस्त जैन घरों की संख्या..
7. क्या आपके यहाँ धार्मिक पाठशाला चलती है?......................................
8. क्या आपके यहाँ स्वाध्याय का कार्यक्रम नियमित चलता है?........................
9. पर्युषण सेवा संबंधी आवश्यक सुझाव..
10. अन्य विशेष विवरण...

आवेदन करने का पता-संयोजक/सचिव, श्री स्थानकवासी जैन स्वाध्याय संघ, प्रधान कार्यालय-घोड़ों का चौक, जोधपुर- 342001 (राज.) फोन नं. 0291-2624891, फैक्स- 2636763, मो.-94604-41570 (संयोजक), 94610-13878 (सचिव), 9460081112 (का. प्रभारी) ,ईमेल-**swadhyaysanghjodhpur@gmail.com**

विशेष- दक्षिण भारत के संघ अपनी मांग श्री स्थानकवासी जैन स्वाध्याय संघ शाखा चेन्नई 24/25, **Basin Water Works Street,Sowcarpet, Chennai-600079** के पते पर भी भेज सकते हैं। सम्पर्क सूत्र- श्री सुधीर जी सुराणा, फोन नं. 09380997333 (मोबाइल)044-25295143 (स्वाध्याय संघ)

जयगुरु हस्ती जयगुरु हीरा जयगुरु मान

क्रोध पर विजय प्राप्त करनी हो तो क्षमा धारण करें।

– आचार्यश्री हस्ती

जोधपुर में प्लॉट, मकान, जमीन, फार्म हाउस खरीदने व बेचने हेतु सम्पर्क करें।

पद्मावती

डेवलपर्स एण्ड प्रोपर्टीज

महावीर बोथरा
09828582391

नरेश बोथरा
09414100257

292, सनसिटी हॉस्पिटल के पीछे, पावटा, जोधपुर 342001 (राज.)
फोन नं. : 0291-2556767

जयगुरु हस्ती जयगुरु हीरा जयगुरु मान

अंतर में सच्चाई चाहिए और व्यवहार में सफाई चाहिए, वही प्राणी संसार में अपना आत्म हित कर जगत के सामने आदर्श रख सकता है ।

- आचार्य श्री हीरा

C/o CHANANMUL UMEDRAJ
BAGHMAR MOTOR FINANCE
S. SAMPATRAJ FINANCIERS
S. RAJAN FINANCIERS

 # 218, Ashoka Road, Lashkar Mohalla,
Mysore-570001 (Karanataka)

With Best Compliments from :

C. Sohanlal Budhraj Sampathraj Rajan
Abhishek, Rohith, Saurav, Akhilesh Baghmar

Tel. : 821-4265431, 2446407 (O)
Mo. : 9845126407 (B), 9845580407 (S), 9845113334 (R)

जयगुरु हस्ती जयगुरु हीरा जयगुरु मान

सामायिक वह महती साधना है, जिसके द्वारा जन्म-जन्मान्तरों के संचित कर्म-मल को नष्ट किया जा सकता है।

BALAJI AUTOS

(Mahindra & Mahindra Dealers)
618, 619, Old No. 224, C.T.H. Road
Padi, Mannurpet, Chennai - 600050
Phone : 044-26245855/56

BALAJI HONDA

(Honda Two Wheelers Dealers)
570, T.H. Road, Old Washermenpet, Chennai - 600021
Phone : 044-45985577/88
Mobile : 9940051841, 9444068666

BALAJI MOTORS

(Royal Enfield Dealers)
138, T.H. Road, Tondiarpet, Chennai - 600081
Maturachaiya Shelters,
Annanagar
Mobile : 9884219949

BHAGWAN CARS

Chennai - 600053
Phone : 044-26243455/66

परस्परोपग्रहो जीवानाम्

With Best Compliments from :

परस्परोपग्रहो जीवानाम्

Parasmal Suresh Kumar Kothari

Dhapi Nivas, 23, Vadamalai Street,
Sowcarpet, Chennai - 600079
Phone : 044-25294466/25292727

Gurudev

SURANA

yes, the best TMT RE-BARS

DRI Plant

Electric Arc Furnace

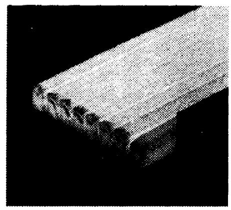
Billets

Rolling Mill

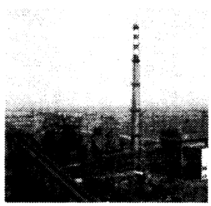
Captive Power Plant

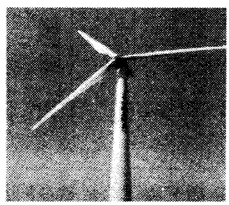
Windmill

With best wishes from

ISO 9001-2008

SURANA INDUSTRIES LIMITED

INTEGRATED STEEL PLANT

MANUFACTURE OF TMT BARS AND ALL KIND OF ALLOY STEEL

 # 29, Whites Road, II Floor, Royapettah, Chennai 600 014/ Ph : 044-28525127 (3 lines) 28525596. Fax: 044-28521143

Email: steelmktg@suranaind.com / www.surana.org.in

STEEL I POWER I MINING

।। श्री महावीराय नमः ।।

हस्ती-हीरा जय जय ! हीरा-मान जय जय !

छोटा सा नियम धोवन का।
लाभ बड़ा इसके पालन का।।

अखण्ड बाल ब्रह्मचारी चारित्र चूड़ामणि, भक्तों के भगवान् 1008
श्री हस्तीमल जी म.सा. के चरणों में हृदय की असीम आस्था से समर्पण
उनके अनमोल खजाने के हीरे-मोती जन-जन के तारणहार
पूज्य आचार्य प्रवर 1008 श्री हीराचन्द्र जी म.सा.,
पण्डित रत्न उपाध्याय प्रवर श्री मानचन्द्रजी म.सा.
एवं समस्त

रत्नाधिक साधु साध्वी मण्डल

के चरण कमलों में भावभरा कोटिशः वन्दन एवं समर्पण...

OUR HUMBLE SALUTATIONS TO THE MOST NOBLE SOULS

PRITHIVIRAJ PREM KUMAR KAVAD
690, Trunk Road, Poonamallee, Chennai - 600 056
Ph. 044-26272196 Mob. : 93810-07273

MANGILAL HARISH KUMAR KAVAD
GURU HASTI THANGA MAALIGAI
(JEWELLERS & BANKERS)
5, Car Street, Poonamallee, Chennai-600 056
Ph. : 044-26272609 Mob. : 95-00-11-44-55

जयगुरु हस्ती जयगुरु हीरा जयगुरु मान

प्यास बुझाये, कर्म कटाये
फिर क्यों न अपनायें
धोवन पानी

Narendra Hirawat & Co.

Flat No. 1, Building No. 2, Navjeevan Society,
Senapati Bapat Marg, Matunga (West), MUMBAI-400 016

Trin-Trin

Matunga Office : 022-24370713, 24380713, 66669707
Opera House Office : 022-23669818
Mobile : 09821040899

गजेन्द्र निधि द्वारा संचालित

आचार्य हस्ती मेधावी छात्रवृत्ति योजना

अखिल भारतीय श्री जैन रत्न युवक परिषद्

आदरणीय रत्नबंधुवर,

रत्न संघ के अष्टम पट्टधर परम पूज्य आचार्य भगवंत 1008 श्री हीराचन्द्र जी म.सा., पंडितरत्न उपाध्यायप्रवर श्री मानचन्द्र जी म.सा. एवं संत-सतीमण्डल की असीम कृपा तथा रत्नसंघ के संघनिष्ठ गुरु भक्तों के पूर्ण सहयोग से गत सात वर्षों से मेधावी छात्र-छात्राओं की शैक्षणिक उन्नति एवं नैतिक व आध्यात्मिक जीवन में अभिवृद्धि करने के लिए छात्रवृत्ति योजना चल रही है। संघ द्वारा इस योजना का विस्तार कर दिया गया है।

निवेदन है कि अपने परिवार में आई खुशियों को मूर्त रूप देने के लिए छात्रवृत्ति योजना में रुपये 3000/-, 6000/- व 9000/- का अर्थ सहयोग करके दिवस विशेषों को चिरस्थायी बनायें एवं पुण्य कमायें या एक छात्र के लिए 12000/- रुपये अथवा उनके गुणक में छात्रवृत्ति राशि का अतिशीघ्र अर्थ सहयोग करावें।

इस योजना में जो गुरुभक्त अर्थ सहयोग करना चाहते हैं, वे चैक, ड्राफ्ट या नकद राशि जमा करा सकते हैं या भेज सकते हैं। कोष का खाता विवरण इस प्रकार है-

A/c Name- Gajendra Nidhi Acharya Hasti Scholarship Fund
A/c No. 168010100120722
Bank Name & Address- AXIS Bank LTD. Anna Salai, Chennai(T.N.) IFSC Code- UTIB0000168
PAN No.-AAATG1995J
Note- Donation to Gajendra Nidhi are exempted u/s 80G of Income Tax Act 1961.

सहयोग के लिए चैक या ड्राफ्ट कार्यालय के इस पते पर भेजें-

B. Budhmal Bohra
211, Aakash Ganga Apartment, 19, Flowers Road,
Kilpak, Chennai-600010 (T.N.)

अधिक जानकारी एवं सहयोग करने के लिए सम्पर्क करें-

Name	Place	Contact No.	Name	Place	Contact No.
Ashok Kavad	Chennai	9381041097	Sumtichand Mehta	Pipar	9414462729
Budhmal Bohra	Chennai	9444235065	Manoj Kankaria	Jodhpur	9414563597
Praveen Karnaavat	Mumbai	9821055932	Kushalchand Jain	Sawai Madhopur	9460441570
Mahendra Bafna	Jalgaon	9422773411	Rajkumar Golecha	Pali	9829020742
Ravindra Jain	Sawai Madhopur	9413401835	Harish Kavad	Chennai	9500114455
Suresh Chordia	Chennai	9444028841	Jitendra Daga	Jaipur	9829011589
Vikram Bagmar	Chennai	9841090292	Sheryansh Mehta	Jodhpur	9799506999

जय गुरु हस्ती

जय गुरु हीरा जय गुरु मान

अगर व्यक्ति प्रभु के मार्ग पर चले तो कहीं भी अशान्ति नहीं हो सकती।
- आचार्य श्री हीरा

सांखला परिवार की ओर से निवेदन

हम :

चौबीसों तीर्थंकरों के चरण
कमलों पर मस्तक रखते हैं
और
विनम्रता तथा गौरव के साथ
जाहिर करते हैं कि
"जिनवाणी" के
उत्कर्षदायी तथा पुण्यात्मक कार्यों में
हमारा सहर्ष
सदैव सहकार रहेगा।

मदन मोहन सांखला,
सौ. हेमलता मदन सांखला
मेहुल मदन सांखला
सौ. प्रणिता मेहुल सांखला और
बेबी बुणम मेहुल सांखला

MAXHEAL

MAXHEAL Group of Companies

Jai Guru Heera Jai Guru Hasti Jai Guru Maan

शाश्वत सुख के लिए प्रतिपल प्रयत्न करने वाले जीव मुमुक्षु कहलाते हैं।
ये जीव साधक भी हो सकते है और श्रावक भी ।
- आचार्य श्री हीरा

BHANSALI GROUP

Dhanpatraj V. Bhansali

BHANSALI DEVELOPERS

Sharda Bhawan, 2nd Floor, Nandapatkar Road,
Vile Parle (E), Mumbai - 400 057
Tel. : (O) 26185801 / 32940462
E-MAIL : bhansalidevelopers@yahoo.com

JAI GURU HASTI JAI GURU HEERA JAI GURU MAAN

प्यास बुझाये, कर्म कटाये फिर क्यों न अपनायें धोवन पानी

With best compliments from

SOHANLAL UMEDRAJ SURENDER HUNDIWAL

S.UMEDRAJ JAIN (HUNDIWAL)
098407 18382
2027 'H' BLOCK 4th STREET,12TH MAIN ROAD,
ANNA NAGAR, CHENNAI-600040
044-32550532

BRANCHES

APPOLO BRIGHT STEELS PVT LTD.
S.P.59, 3 rd MAINROAD
AMBATTUR ESTATE CHENNAI-600058
044-26258734, 9840716053, 98407 16056
FAX: 044-26257269
E-MAIL: appolobright@yahoo.com

APPOLO CORRUGATORS PVT LTD.
NO.400 NORTH PHASE, SIDCO INDUSTRIAL ESTATE,
AMBATTUR CHENNAI-60098
FAX: 044-26253903, 9840716054
E-MAIL:appolocorrugators@yahoo.com

आर.एन.आई. नं. 3653/57 डाक पंजीयन संख्या RJ/JPC/M-21/2012-14
मुद्रण तिथि दिनांक 5 से 8 मई, 2014
वर्ष : 72 ★ अंक : 05 ★ मूल्य : 10 रु.
डाक प्रेषण तिथि 10 मई, 2014 ★ वैशाख, 2071

Kalpataru

AURA

• Awarded Best Architecture (Multiple Units) at Asia Pacific Property Awards 2010 • A complex of multi-storeyed buildings • Luxurious 2 BHK & E3 homes • Two clubhouses with gymnasium, squash, half-basketball and tennis courts • Mini-theatre • Yoga room • Swimming pool • Multi-functional room • Spa • Landscaped garden and children's play area • Safety and security features

KALPA-TARU®

Site Address: LBS Marg, Ghatkopar (West), Mumbai - 400 086.
Head Office: 101, Kalpataru Synergy, Opp. Grand Hyatt, Santacruz (East), Mumbai - 400 055.
Tel.: 022-3064 3065 • **Fax:** 022-3064 3131
Email: sales@kalpataru.com • **Visit:** www.kalpataru.com

All specifications, designs, facilities, dimensions, etc. are subject to the approval of the respective authorities and the developers reserve the right to change the specifications or features without any notice or obligation. Images are for representative purposes only. All project elevations are an artistic design. Conditions apply.

Kalpataru Limited is proposing, subject to market conditions and other considerations, to make a public issue of securities and has filed a Draft Red Herring Prospectus ("DRHP") with the Securities and Exchange Board of India (SEBI). The DRHP is available on the website of SEBI at www.sebi.gov.in and the respective websites of the Book Running Lead Managers at www.morganstanley.com/indiaofferdocuments, www.online.citibank.co.in/rhtm/citigroupglobalscreen1.htm, www.csinga.com, www.icicisecurities.com, www.nomura.com/asia/services/capital_raising/equity.shtml, www.idfccapital.com. Investors should note that investment in equity shares involves a high degree of risk and for details relating to the same, see 'Risk Factors' in the aforementioned offer documents. This communication is not for publication or distribution to persons in the United States, and is not an offer for sale within the United States of any equity shares or any other security of Kalpataru Limited. Securities of Kalpataru Limited, including its equity shares, may not be offered or sold in the United States absent registration under U.S. securities laws or unless exempt from registration under such laws.

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक – विनय चन्द डागा द्वारा दी डामयण्ड प्रिंटिंग प्रेस, जौहरी बाजार, जयपुर से मुद्रित व सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल, जयपुर – 302003 से प्रकाशित । सम्पादक – डॉ. धर्मचन्द जैन